मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 99 ● वर्ष 11, अंक 6 ● अगस्त 2021 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

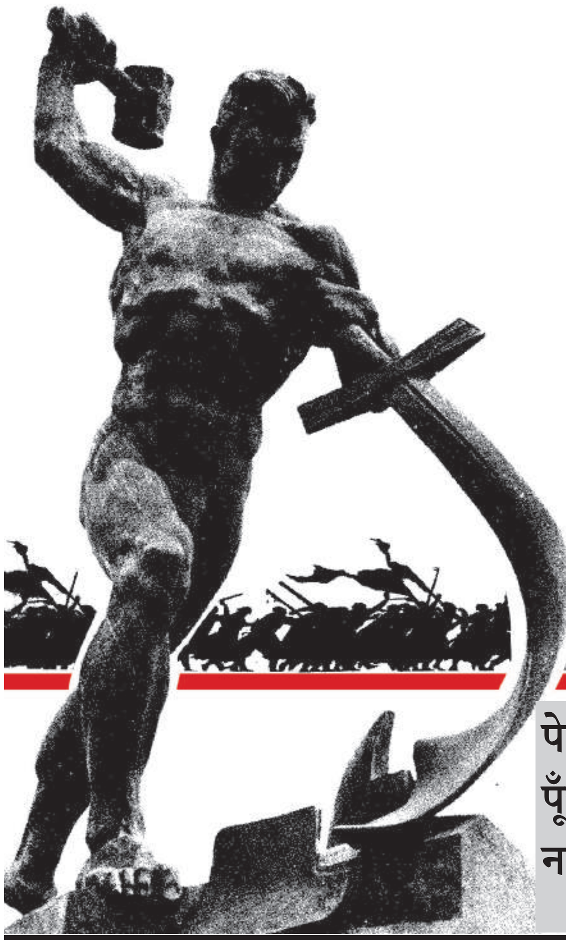

# मज़दूर बिगुल

पेगासस : डरी हुई पूँजीवादी सत्ताओं का नया हथियार 11

तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष के 75 साल : उपलब्धियाँ और सबक़ 8

बीस साल से जारी युद्ध में तबाही के बाद अफ़ग़ानिस्तान गृहयुद्ध की ओर 13

## 75वें स्वतंत्रता दिवस का जश्न वे मनायें जिन्हें इस लुटेरी व्यवस्था ने सबकुछ दिया है

# मेहनतकशों को तो अपनी असली आज़ादी हासिल करने के लिए नयी जंगे-आज़ादी की तैयारी करनी होगी!

**सम्पादक मण्डल**

आने वाले पन्द्रह अगस्त को 75वें स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाने की तैयारियाँ जारी हैं। सबसे ज़्यादा शोर वे मचा रहे हैं जिन्होंने ब्रिटिश हुक़ूमत के ख़िलाफ़ लड़ाई में कभी एक ढेला तक नहीं चलाया, क्रान्तिकारियों की मुखबिरी तक की और जंगे-आज़ादी को कमज़ोर करने के लिए उस समय भी हिन्दू-मुस्लिम को बाँटने में लगे रहते थे।

पूरा सत्ताधारी वर्ग और पिछले 74 सालों के दौरान पैदा हुए मलाई चाटने वाली जमातें जोर-शोर से स्वतंत्रता दिवस का जश्न मनायेंगी और अपनी "देशभक्ति" का फूहड़ प्रदर्शन करेंगी। और वे जश्न क्यों न मनायें? आखिर इस आज़ादी का भरपूर फ़ायदा तो उन्हें ही मिला है। लेकिन आम मेहनतकश जनता इस जश्न में कैसे शामिल हो? आज़ादी के इन गुज़रे सालों में उसे क्या मिला है? इन 74 वर्षों के दौरान जनता की मेहनत को लूटकर-निचोड़कर ऊपर के पन्द्रह-बीस प्रतिशत लोगों की सम्पत्ति और अय्याशियाँ बढ़ती गयी हैं जबकि जनता के हिस्से में आया है भयंकर शोषण, लूट-खसोट, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, अपराध, चुनावी राजनीति के हथकण्डों से भड़काये गये दंगे, आपसी कलह-विग्रह, अत्याचार, दमन और उत्पीड़न।

पिछले 7 साल से प्रधानमंत्री मोदी सहित केन्द्र सरकार के तमाम मंत्री और भोंपू मीडिया पूरे जोशोख़रोश के साथ डंका बजाते रहे हैं कि देश के विकास का रथ विकास के राजमार्ग पर कुलाँचे भर रहा है। जीडीपी की बढ़ती दर दिखाने के लिए फ़र्ज़ी आँकड़ों की नुमाइश होती रही है। "अच्छे दिनों" के इन्तज़ार में रोज़ नयी तकलीफ़ें सहते-सहते देश की आम मेहनतकश जनता के सब्र का प्याला छलकने लगा, मगर जनता की गाढ़ी कमाई से बड़े पूँजीपतियों को तरह-तरह के तोहफ़े लुटाये जाते रहे हैं। जब कोरोना महामारी और बिना किसी योजना व तैयारी के थोपे गये लॉकडाउन के कारण करोड़ों मेहनतकश लोग ग़रीबी और बेरोज़गारी में धकेल दिये गये, तब भी मोदी सरकार के चहेते पूँजीपतियों की सम्पत्ति दोगुनी हो गयी। कहीं से कोई विरोध न हो, इसलिए जनता को दबाने, कुचलने, उसका मुँह बन्द करने, मूल मुद्दों से बहकाने और आपस में बाँटने के तमाम हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं।

आज भी देश के विकास का डंका बजाया जा रहा है और लोगों को यह झूठ परोसा जा रहा है कि महामारी ने थोड़ा झटका दे दिया है वरना भारत तो विश्वगुरु बनने की राह पर तेज़ी से डग रहा था। मगर देश की करोड़ों-करोड़ मेहनतकश जनता तो विकास के इन राजमार्गों से अलग-थलग महानगरों की अँधेरी सीलनभरी झुग्गियों में, कस्बों-गाँवों की ऊबड़-खाबड़ सड़कों-खड़ंजों के किनारे लहूलुहान पड़ी हुई है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। यही तो पूँजीवादी विकास का स्वाभाविक विरोधाभास है। विकास की चमकती तस्वीर का दूसरा पहलू है। पूँजीवादी समाज में खुशहाली के जगमगाते टापू तबाही-बदहाली के महासागरों के बीच ही खड़े होते हैं।

जनता की अकूत क़ुर्बानियों के दम पर 1947 में देश विदेशी ग़ुलामी से आज़ाद हो गया और राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो गया। लेकिन जो पूँजीपति वर्ग सत्ता में आया उसने साम्राज्यवाद से अपने रिश्ते नहीं तोड़े। अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता को क़ायम रखने के लिए उसने नेहरू के "समाजवाद" के जुमले के साथ पब्लिक सेक्टर पूँजीवाद का एक ढाँचा खड़ा किया और साम्राज्यवाद पर अपनी वित्तीय और प्रौद्योगिकीय निर्भरता को सीमित रखा। नतीजतन, देश में देशी पूँजीपति वर्ग और साम्राज्यवाद की लूट जारी रही। देश के पैमाने पर देश का पूँजीपति वर्ग इस लूट का बड़ा साझीदार रहा है, जबकि दुनिया के पैमाने पर देश का पूँजीपति वर्ग

(पेज 12 पर जारी)

# कोरोना से हुई मौतों का सच छिपाने की मोदी सरकार की कोशिश बेनक़ाब!

## अनेक रिपोर्टों ने साबित किया कि भारत में सरकारी आँकड़ों से 10 गुना ज़्यादा मौतें हुईं

**– योगेश**

फ़ासीवादी मोदी सरकार द्वारा देश में कोरोना महामारी से हुई मौतों को छुपाने व मौत के ग़लत आँकड़े पेश करने के बावजूद कई रिपोर्टों से अब यह साबित हो रहा है कि दुनिया में कोरोना महामारी से सबसे ज़्यादा मौतें, एक रिपोर्ट के मुताबिक़ लगभग 47 लाख, भारत में हुई हैं। मानवद्रोही व संवेदनहीन मोदी सरकार का यह दावा कि कोरोना की दूसरी लहर में देश में ऑक्सीजन की कमी से एक भी मौत नहीं हुई, महज़ एक लफ़्फ़ाज़ी है। इस साल के अप्रैल-मई माह में आपने स्वयं देखा-सुना होगा कि देशभर में लोग ऑक्सीजन की कमी से चीखते-चिल्लाते रहे, ऑक्सीजन सिलेण्डरों के केन्द्रों पर लम्बी-लम्बी लाइनें लगती रहीं। देशभर के अस्पतालों में डॉक्टर यही कहते दिखे कि मरीज़ को बचाना है तो ऑक्सीजन का इन्तज़ाम कर लो। उस समय के न्यूज़ चैनल व सोशल मीडिया पर आ रहे वीडियों में लोग रोते-बिलखते बता रहे थे कि उनके मरीज़ ऑक्सीजन की कमी के कारण मर गये। देश की राजधानी दिल्ली के ही दो निजी अस्पतालों बत्रा व जयपुर गोल्डन में ऑक्सीजन की कमी के चलते ही क्रमशः 12 व 20 मौतें हुई जो उस समय की एक बड़ी ख़बर बनी। ऐसी ही कई मौतें देशभर के कई छोटे-बड़े अस्पतालों में हुईं। उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में बीते अप्रैल और मई में ही सैंकड़ों मौतें सिर्फ़ ऑक्सीजन की कमी के चलते हुईं; 22 जुलाई, 2021 के अमर उजाला के कानपुर संस्करण की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ इस साल अप्रैल-मई में कोरोना से जो मौतें हुईं, उनमें आधे से ज़्यादा ऑक्सीजन की कमी के कारण हुई। देशभर में हो रही मौतों के इस मंज़र को देखकर भी हत्यारी फ़ासीवादी मोदी सरकार ही बेशर्मी के साथ यह बयान दे सकती है कि उस दौरान एक भी मौत ऑक्सीजन की कमी से नहीं हुई। हालाँकि मोदी सरकार इस बयान को लेकर देश में और दुनिया में अपनी थू-थू करवाने के बाद अब राज्य सरकारों से ऑक्सीजन की कमी से हुई मौतों की सूची माँग रही है।

**कोरोना महामारी से दुनिया में सबसे ज़्यादा मौतें भारत में हुईं**

भारत में कोरोना वायरस से अब तक हुई मौतों के आँकड़ों को लेकर कुछ

(पेज 2 पर जारी)

# कोरोना से हुई मौतों का सच छिपाने की मोदी सरकार की कोशिश बेनक़ाब!

(पेज 1 से आगे)

नए शोध सामने आए हैं। ऐसी ही एक शोध में दावा किया गया है कि भारत में कोरोना से मरने वालों की संख्या कम से कम 27 लाख से 33 लाख है। यह शोध टोरण्टो विश्वविद्यालय में सेण्टर फ़ॉर ग्लोबल हेल्थ रिसर्च के डॉ. प्रभात झा और डॉ. पॉल नोवोसाद ने की है। टोरण्टो विश्वविद्यालय की यह शोध जून 2020 से 2021 के बीच भारत के आठ राज्यों और सात शहरों में दर्ज अतिरिक्त मृत्यु दर पर आधारित है। शोध में कहा गया है कि 2020 में भारत में कोरोना की पहली लहर दौरान दर्ज की गई औसत मृत्यु दर 22 फ़ीसदी थी। आन्ध्र प्रदेश में मृत्यु दर 63 फ़ीसदी थी जबकि केरल में यह 6 फ़ीसदी थी। इस साल अप्रैल और जून के बीच महामारी की दूसरी लहर के दौरान मृत्यु दर बढ़कर 46 फ़ीसदी हो गई और मध्य प्रदेश में 198 फ़ीसदी तक पहुँच गई। अतिरिक्त मृत्य दर 2020 और 2021 के दौरान किसी भी कारण से हुई मौतों और उसके पहले के वर्षों में हुई मौतों के बीच का अन्तर है। शोधाकर्ताओं का मानना है कि इनमें से अधिकतर अतिरिक्त मौतें कोविड-19 के कारण हुई हैं।

शोध में यह भी दावा किया गया है कि पिछले दो साल में 35 साल से अधिक उम्र के लोगों में अतिरिक्त मौतों का कारण कोरोना ही रहा है। यह शोध नागरिक रजिस्ट्रेशन प्रणाली के मृत्यु दर के आँकड़ों पर आधारित है। इस डेटा को स्वास्थ्य प्रबन्धन सूचना प्रणाली और टेलीफ़ोनिक सर्वेक्षण के माध्यम से एकत्र किया गया है, जो जन्म और मृत्यु के पूरे रिकॉर्ड रखता है। अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाँच राज्यों मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल और हरियाणा में में 6.3 लाख अतिरिक्त मौतों का अनुमान लगाया है, जिसके लिए शोधकर्ताओं के पास दस या अधिक महीनों का डेटा उपलब्ध था। शोधकर्ताओं ने यह भी पाया कि राज्यों में इन अतिरिक्त मौतों में से अधिकतर यानी 4.5 लाख अप्रैल और मई के दौरान हुईं, जब महामारी की दूसरी लहर अपने चरम पर थी। एक अन्य रिपोर्ट के मुताबिक़ देशभर में कोरोना की पहली लहर के तुलना में दूसरी लहर में 21 से 50 उम्र के लोगों की मृत्यु की संख्या में 3 फ़ीसदी का बढ़ोत्तरी हुई है। (इण्डिया.स्पेण्ड.डॉट 28/06/21)।

मोदी सरकार द्वारा प्रचारित अन्य झूठों की ही तरह भारत में अब तक कोरोना से मरने वाले लोगों की संख्या को भी कम करके प्रस्तुत किया गया। मोदी सरकार के मुताबिक़ देश में कोरोना से अब तक मात्र 4 लाख 21 हजार मौतें हुई हैं, जबकि एक अमेरिकी शोध समूह की रिपोर्ट में इससे 10 गुना ज़्यादा मौतें होने का दावा किया गया है। भारत में कोरोना से मरने वाले ऐसे लोगों की संख्या भी बड़ी होगी, जिन्हें इस बीमारी से पीड़ित होने पर किसी अस्पताल में दाख़िला ही नहीं मिल पाया और उनकी मौत घर पर ही हो गई। शोधकर्ताओं के मुताबिक़ वास्तव में मौतों का आँकड़ा दसियों लाख में हो सकता है। अगर इस आँकड़े को देखा जाये तो भारत में आज़ादी और विभाजन के बाद से यह सबसे बड़ी त्रासदी है।

सेण्टर फ़ॉर ग्लोबल डेवलपमेण्ट स्टडी की ओर से जारी एक रिपोर्ट में सरकारी आँकड़ों, अन्तरराष्ट्रीय अनुमानों, सेरोलॉजिकल रिपोर्टों और घरों में हुए सर्वेक्षण को आधार बनाया गया है। इस रिपोर्ट की विशेष बात यह है कि इसको तैयार करने वालों में मोदी सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार रहे अरविन्द सुब्रमण्यम भी शामिल हैं। शोधकर्ताओं का दावा है कि कोरोना से मृतकों की वास्तविक संख्या कुछ हज़ार या लाख नहीं बल्कि दसियों लाख में होगी। इसके पहले अन्तरराष्ट्रीय पत्रिका 'द इकोनॉमिस्ट' ने एक रिपोर्ट में कहा था कि भारत में कोरोना से हुई मौतों का वास्तविक आँकड़ा 5-7 गुना अधिक होगा। हालाँकि केन्द्र सरकार ने इस रिपोर्ट को सिरे से ख़ारिज कर दिया था। कोविड-19 से हुई मौतों के मामले में उत्तराखण्ड देश में दूसरे स्थान पर है। सबसे ज़्यादा मौतें पंजाब में हुई हैं। हालात ये हैं कि पहली और दूसरी लहर में उत्तराखण्ड में 30 जून तक कुल 7,316 लोगों की मृत्यु इस महामारी से हो चुकी थी। अहम बात यह है कि इनमें से अधिकांश मौतों को छुपाया गया है। मौत बैकलॉग के अब तक 1210 मामले सामने आ चुके हैं। हालाँकि सरकार कोरोना से मौत के आँकड़ों को छुपाने वालों पर कार्रवाई करने की बात कर रही है, लेकिन नौकरशाही केवल नोटिस जारी करने की खानापूर्ति ही कर रही है। अभी तक मौत का इतना बड़ा बैकलॉग सामने आने के बाद भी किसी भी अस्पताल के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की गयी है।

इस जनसंहार के लिए मोदी सरकार की आपराधिक लापरवाही ज़िम्मेदार है।

वास्तव में, कोरोना संक्रमण का महामारी में तब्दील होना मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था की ही देन है जिसमें जनता के जीवन का कोई मूल्य नहीं है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि महामारियों का पैदा होना भी एक पूर्णतः स्वतःस्फूर्त प्राकृतिक प्रक्रिया नहीं है। तमाम जीवविज्ञानी अब दिखला चुके हैं कि बढ़ते वायरल संक्रमणों और महामारियों और साथ ही उन पर क़ाबू पाने की अक्षमता के लिए मुनाफ़े की हवस में पर्यावरण और समूची प्रकृति की पूँजीवाद द्वारा तबाही ज़िम्मेदार है। उस पर हमारे देश में शासन कर रही मानवद्रोही फ़ासिस्ट मोदी सरकार ने इस महामारी को कई गुना और बढ़ा दिया है। दुनिया के बहुत सारे देशों में इस समय मास्क मुफ़्त में मिल रहे हैं। कई देश अपने ज़्यादातर नागरिकों को कोरोना वैक्सीन का टीका निःशुल्क दे चुके हैं। स्पेन जैसे पूँजीवादी देश तक ने तमाम प्राइवेट अस्पतालों का राष्ट्रीकरण करके उन्हें सरकारी नियंत्रण के मातहत ला दिया था। लेकिन हमारे यहाँ मोदी सरकार वैज्ञानिकों, स्वास्थ्यकर्मियों और विशेषज्ञों की बातों को दरकिनार करके भयंकर आपदा को न्योता दे रही थी।

**"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन**

**'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।**

**यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।**

**बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।**

**सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।**

## मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

**www.mazdoorbigul.net**

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
**www.facebook.com/MazdoorBigul**

## 'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul


## मज़दूर बिगुल

| | |
|---|---|
| सम्पादकीय कार्यालय | : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546 |
| दिल्ली सम्पर्क | : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 88607 92320 |
| ईमेल | : bigulakhbar@gmail.com |
| मूल्य | : एक प्रति – 5/- रुपये<br>वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)<br>आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये |

## न्यूनतम मज़दूरी पर फिर एक सरकारी कमेटी का गठन

# मोदी सरकार के मज़दूर विरोधी मंसूबों का एक और नमूना

**– रूपा**

मज़दूरों के शरीर का कतरा-कतरा नोच लिया जाये और मज़दूर चूँ तक न करें, इसे सुनिश्चित करने के लिए विशेष तौर पर बड़े पूँजीपति वर्ग और आम तौर पर समूचे पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े के रास्ते में आने वाली हर रुकावट को दूर करने के लिए फासीवादी मोदी सरकार धड़ल्ले से मज़दूर-विरोधी नीतियों को लागू कर रही है।

मज़दूरों के जुझारू संघर्षों की बदौलत हासिल हुए श्रम अधिकारों को ख़त्म करने के लिए पहले से ही कमज़ोर 44 श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर मोदी सरकार 4 लेबर कोड बनाने का काम पहले ही कर चुकी है। तमाम श्रम क़ानूनों को काफ़ी हद तक बेअसर बनाने का काम तो पिछले तीन दशकों के दौरान सभी सरकारें करती रही हैं। अब इन्हें और भी लचीला और कमज़ोर बनाने के लिए ये चार लेबर कोड लाये गये हैं। मज़दूरी पर लेबर कोड के लागू होते ही पहले के चार क़ानून – वेतन भुगतान अधिनियम 1936, न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, बोनस भुगतान अधिनियम 1965 और समान पारिश्रमिक अधिनियम ख़त्म हो जायेंगे। इससे मालिकों के लिए मज़दूरों को मनमानी मज़दूरी देकर काम कराना और भी आसान हो जायेगा।

अब सरकार ने न्यूनतम वेतन निर्धारित करने के लिए एक स्पेशल कमेटी बनायी है जिसमें कि तीन सरकारी प्रतिनिधि शामिल किये गये हैं ताकि सबकुछ मोदी सरकार की मर्ज़ी से ही तय हो। सरकार के मुताबिक "न्यूनतम मज़दूरी और राष्ट्रीय तल स्तरीय न्यूनतम मज़दूरी के बारे में तकनीकी जानकारी और सिफ़ारिशें देने के लिए" इस विशेषज्ञ कमेटी का तीन सालों के लिए गठन किया गया है जिसका अध्यक्ष इंस्टीट्यूट ऑफ़ इकोनॉमिक ग्रोथ के निदेशक प्रोफेसर अजीत मिश्रा को बनाया गया है। लेकिन सवाल है कि इस कमेटी की ज़रूरत ही क्या थी? और इसमें तीन सरकारी प्रतिनिधि क्यों रखे गये हैं?

अभी तक न्यूनतम मज़दूरी दो मुख्य कारकों के आधार पर तय होती थी। पहला, 1957 में हुए पन्द्रहवें राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन की सिफ़ारिशें और दूसरा,1992 में मज़दूरों बनाम रेप्टाकोस ब्रेट कम्पनी के मामले में दिया गया सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला। श्रम सम्मेलन ने ज़रूरतों पर आधारित न्यूनतम मज़दूरी की बात रेखांकित की जिसमें पौष्टिक भोजन, पर्याप्त कपड़े, और मकान के साथ ईंधन जैसे ख़र्चों को शामिल करने के मानदण्ड तय किये गये थे। सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले ने इसमें बच्चों की शिक्षा, दवा-इलाज, मनोरंजन और शादी तथा बुढ़ापे की देखभाल आदि को भी शामिल कर दिया। यह अलग बात है कि इन तमाम चीज़ों के आधार पर सरकार जो न्यूनतम मज़दूरी तय करती रही है उसमें इन ज़रूरतों को पूरा करना सम्भव ही नहीं होता है। दूसरे, ज़्यादातर मज़दूरों को सरकार द्वारा तय न्यूनतम मज़दूरी मिलती ही नहीं है। अलग-अलग राज्य सरकारें भी मनमाने ढंग से न्यूनतम मज़दूरी तय करती हैं जिनमें भारी अन्तर होता है।

दो साल पहले, 2018 में भी न्यूनतम मज़दूरी पर वीवी गिरि राष्ट्रीय श्रम संस्थान के प्रोफ़ेसर सत्पथी की अध्यक्षता में एक कमेटी बनायी गयी थी जिसने जनवरी 2019 में 124 पेज की अपनी रिपोर्ट सरकार को दी थी। इसने 375 रुपये प्रतिदिन की राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी और 9750 रुपये की मासिक न्यूनतम मज़दूरी के साथ शहरी इलाकों में रहने वाले मज़दूरों के लिए 1430 रुपये मकान भत्ते की सिफ़ारिश की थी। हालाँकि ज़्यादातर ट्रेड यूनियनों ने इसे ख़ारिज करते हुए सातवें वेतन आयोग में अनुशंसित मज़दूरी दर के अनुसार 600 रुपये प्रतिदिन की राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी की माँग की थी।

सत्पथी कमेटी ने सुप्रीम कोर्ट के कुछ दिशा-निर्देशों के साथ छेड़छाड़ भी की थी और कैलोरी की ज़रूरी खपत को 2700 से घटाकर 2400 कर दिया था। यहाँ तक कि बुनियादी चीजों की लागत की गणना भी 2012-2013 की कीमतों के आधार पर की गयी थी। ऐसी **तमाम कटौतियाँ करते हुए जो 375 रुपये न्यूनतम मज़दूरी तय की गयी थी, वह भी मोदी सरकार को बहुत ज़्यादा लग रह रही थी! इसीलिए सरकार की ओर से मज़दूरी पर आयोजित किसी भी वार्ता में सत्पथी कमेटी की रिपोर्ट की चर्चा भी नहीं आयी। उल्टे, 2019 में केन्द्र सरकार ने मज़दूरों का मज़ाक़ उड़ाते हुए राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी की दर 176 से बढ़ाकर 178 रुपये और मासिक न्यूनतम मज़दूरी 4628 रुपये करने की घोषणा कर दी! अब पिछली रिपोर्ट को ख़ारिज करते हुए एक नयी कमेटी बना दी गयी है।**

नये लेबर कोड लागू के अनुसार न्यूनतम मज़दूरी की दर समयानुसार और मात्रानुसार (पीस वर्क) के हिसाब से तय होगी। वेतनकाल घण्टे, दिन या महीने के हिसाब से तय हो सकता है। यह 15वें श्रम सम्मेलन और सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले के पूरी तरह ख़िलाफ़ है, जिसमें आवश्यकताओं पर आधारित न्यूनतम मज़दूरी की बात कही गयी थी, यानी उचित मात्रा में पौष्टिक भोजन, पर्याप्त कपड़े, आवास के साथ-साथ बच्चों की शिक्षा, दवा-इलाज, मनोरंजन आदि के ख़र्चों को भी शामिल किया गया है।

पहले भी तय न्यूनतम मज़दूरी की सीमा का लगभग 90 फ़ीसदी मज़दूर आबादी के लिए कोई मतलब नहीं था। सरकारी न्यूनतम मज़दूरी सिर्फ़ काग़ज़ पर रहती थी और मालिकान अपनी ज़रूरत और मज़दूर की मजबूरी के हिसाब से मनमानी मज़दूरी देते थे। लेकिन अब सरकार इसे भी क़ानूनी जामा पहनाने की फिराक़ में है, ताकि मज़दूरों को कम से कम देकर उनसे ज़्यादा से ज़्यादा काम करवाकर मुनाफ़ाखोरों की सेवा की जा सके। मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से परेशान भारत के पूँजीपति वर्ग ने ऐसे ही कामों के लिए तो मोदी को गद्दी पर बिठाया है।

भले ही गोदी मीडिया समान वेतन का भोपू बजाकर लोगों के दिमाग में ये बात बैठाने की कोशिश करे कि लेबर कोड लागू हो जाने के बाद सबका वेतन समान हो जायेगा लेकिन सच्चाई यह है कि इन कोडों से रोज़गार सूची को हटा दिया गया है अर्थात् कुशल, अर्धकुशल और अकुशल श्रेणी के मज़दूरों को समान श्रेणी में ही रखा गया है जिससे ज़ाहिरा तौर पर कुशल और अर्धकुशल मज़दूरों को नुकसान होने वाला है। देश में पहले से ही कुशल मज़दूरों को एक अर्धकुशल मज़दूर का वेतन दिया जाता है। लेकिन अब इसे ही मोदी सरकार ने क़ानून के दायरे में ला दिया है। अब इसके ख़िलाफ़ मज़दूर आवाज़ भी नहीं उठा सकते हैं।

मालिकों को यह छूट दी गई है कि सन्तोषजनक काम न करने पर मालिकों को वेतन काट लेने का अधिकार होगा लेकिन मालिक मज़दूरों को किस स्थिति में रखकर काम कराता है, लंच ब्रेक देता है या नहीं, समय पर वेतन देता है या नहीं, सुरक्षा के इन्तज़ाम हैं या नहीं, इन सबसे सरकार को कोई लेना-देना नहीं है।

नये कोड में फ़ैक्टरियों में "ऑनलाइन जाँच" की बात की गयी है। कारख़ाना इंस्पेक्टर का पद तो पहले ही ख़त्म कर दिया गया था। अब फ़ैक्ट्रियों में ना कोई आकस्मिक जाँच होगी, ना ही मालिकों पर कोई आँच आयेगी। पहले पाँच साल में एक बार वेतन संशोधन की सीमा रखी गयी थी, जिसे मोदी सरकार ने पूरी तरह ख़त्म कर दिया। पहले स्त्री-पुरुष मज़दूरों का समान वेतन क़ानून सिर्फ़ काग़ज़ों पर ही था और स्त्री मज़दूरों को पुरुष मज़दूरों की तुलना में काफ़ी कम वेतन मिलता था। लेकिन अब यह क़ानूनी तौर पर होगा।

ऐसे में अजीत मिश्रा कमेटी का गठन कई सन्देहों को जन्म देता है। यह बात तय है कि यह कमेटी न्यूनतम वेतन कम से कम करने की कोशिश करेगी क्योंकि तमाम निर्देशों को तोड़ने-मरोड़ने के लिए और तथ्यों के साथ छेड़छाड़ करने के लिए इस कमेटी के पास तीन साल का लम्बा समय भी है।

# मज़दूर इलाक़ों में बारिश तकलीफ़ों की बाढ़ लेकर आती है

पूँजीवादी व्यवस्था ने मेहनतकशों को इस हाल पर छोड़ दिया है कि गर्मी, सर्दी, बारिश का सबसे बुरा असर मज़दूर-मेहनतकश आबादी पर ही पड़ता है। हाल ही में दिल्ली के अधिकांश मज़दूर इलाक़ों का यही हाल देखने को मिला। एक दिन की बारिश के बाद ही मज़दूर इलाकों में जलभराव की समस्या पैदा हो गयी। दिल्ली के शाहाबाद-डेरी इलाक़े में हुई बारिश में वहाँ की झुग्गियों में पानी घुस गया, जिससे कई दिनों तक मज़दूरों को मुसीबतों का सामना करना पड़ा।

शाहाबाद डेरी को बसे लगभग पचास वर्ष होने को आये हैं, लेकिन यहाँ आज तक पक्का सीवर नहीं है, न ही नालियाँ पक्की हैं, जिसके कारण आये दिन दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। इलाक़े के बीचों-बीच एक राक्षस रूपी नाला है, जो अब तक न जाने कितनी ज़िन्दगियों को लील चुका है। गन्दगी की निकासी न होने के कारण बारिश के मौसम में गन्दा पानी घरों में घुस जाता है और सड़कों पर जमा हो जाता है। नालियों में पैदा होने वाले कीड़े घरों में खाने के सामान के पास और बिस्तरों तक पहुँच जाते हैं। यही मंज़र इस बारिश में भी देखने को मिला।

शाहाबाद-डेरी के पाँच मन्दिर इलाक़े में नाली का पानी सड़कों और झुग्गियों में भर गया। पानी भरने के कई घण्टों बाद भी स्थानीय प्रशासन हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा। बारिश के कारण लोगों में ग़ुस्सा है, क्योंकि खाना बनाने की जगह तक में नाली का पानी भर गया है, लोग रात गन्दे पानी से सने बिस्तरों में बिताने को मजबूर हैं। इसी के साथ नालियों में गहरे गड्ढे होने के कारण इलाक़े में कई हादसे हो चुके हैं और सिर्फ़ शाहाबाद डेरी ही नहीं, दिल्ली के कई मज़दूर इलाक़ों में बारिश के पानी में बच्चों की डूबकर मरने की ख़बरें सामने आयी हैं। मेट्रो विहार (बवाना औद्योगिक क्षेत्र) में बारिश के पानी से भरे गहरे गड्ढे में 9 वर्ष के एक बच्चे की मौत हो गयी। इसके अलावा गन्दे पानी के कारण लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। लगातार गन्दे पानी में रहने के कारण खुजली, बदन-दर्द, बुख़ार, खाँसी, ज़ुकाम जैसी बीमारियाँ सबको जकड़े हुए हैं। लेकिन इतना सब होने के बावजूद प्रशासन की ओर से इलाक़े में कोई मेडिकल सुविधा मुहैया नहीं की गयी है।

इन मुद्दों को लेकर जब स्थानीय लोगों और भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (आर.डब्लू.पी.आई) के कार्यकर्ताओं द्वारा आम आदमी पार्टी के विधायक जय भगवान उपकार को घेरा गया तब विधायक ने पहले तो लोगों की समस्या सुनने का स्वांग रचा, लेकिन ये स्वांग ज़्यादा मिनट नहीं चल पाया। विधायक ने आर.डब्ल्यू.पी.आई के कार्यकर्ताओं को चुप कराने की कोशिश की, लेकिन जब कार्यकर्ताओं ने फिर सवाल किया तो विधायक बिफ़र पड़ा और धमकी देने लगा कि हमें और भी तरीक़े आते हैं। अन्त में विधायक लोगों के सवालों का जवाब दिये बिना ही भाग खड़ा हुआ। इसी के साथ स्थानीय निगम-पार्षद जोकि आम आदमी पार्टी से ही है, को नाली के पानी की निकासी हेतु अवगत करवाया तो पार्षद बदतमीज़ी पर उतारू हो गया और उसने अधिकार क्षेत्र से बाहर होने का हवाला देकर अपना पल्ला झाड़ लिया।

लोगों में सारी पार्टियों के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा है। उनका सवाल इन तमाम सरकारों से है जो जनप्रतिनिधि होने का स्वांग रचते है, पर असल में चाकरी सिर्फ़ पूँजीपतियों की करते हैं। यही केजरीवाल सरकार जो हाल में निगम-पार्षद के उपचुनाव में इलाक़े का कायाकल्प करने की बात कह रही थी, चुनाव जीतने के बाद अपने वायदों को भूल चुकी है। विधायक और निगम-पार्षद एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाकर अपनी ज़िम्मेदारियों से पल्ला झाड़ रहे हैं।

ऐसे में आर.डब्लू.पी.आई की ओर से इलाक़े में नियमित तौर पर मेडिकल कैम्प लगाया जा रहा है। मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में गठित गली कमेटियों में निर्णय लिया गया है कि एकजुट होकर प्रशासन पर लगातार दबाव बनाया जाएगा। इसी के साथ आपसी सहयोग से जल-निकासी का काम किया जाएगा। आगामी निगम चुनावों में आम आदमी पार्टी, कांग्रेस, भाजपा समेत तमाम पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों का बहिष्कार करने का निर्णय भी लिया गया।

रिपोर्ट लिखे जाने तक दुबारा बारिश होने के कारण पानी एक बार फिर लोगों के घरों में जाने लगा है, लोग आपसी सहयोग से बारिश का पानी घरों से निकाल रहे हैं।

**– बिगुल संवाददाता**

# दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों में पीने के पानी की भीषण क़िल्लत

आज़ादी के सात दशक बाद भी भारत की पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूर आबादी को साफ़ पीने का पानी तक मुहैया नहीं करा पायी है। देश की राजधानी दिल्ली में पानी की समस्या लगातार विकराल रूप धारण करती जा रही है। सबसे बुरा हाल मज़दूर इलाक़ों का है, जहाँ पानी के लिए लोगों को घण्टों इन्तज़ार करना पड़ता है। मज़दूर इलाक़ों में आपको लोग तड़के चार बजे उठकर पानी भरते नज़र आ जाएँगे। ज़्यादातर मज़दूर इलाक़ों में पानी की पाइपलाइन अब तक नहीं बिछी है, जिसके कारण लोगों को कई किलोमीटर पैदल चलकर पानी ढोकर लाना पड़ता है। जिन इलाक़ों में पाइपलाइन बिछी भी है, वहाँ कुछ ही घण्टे पानी आता है। मज़दूर-मेहनतकश बारह घण्टे खटकर आते हैं, फिर उन्हें घण्टों पानी के लिए भटकना पड़ता है। कई जगह पानी दिन में आता है, इस वजह से काम पर गये लोग पानी भर ही नहीं पाते हैं। उस समय ज़्यादातर महिलाएँ और बच्चे पानी के लिए जंग लड़ रहे होते हैं।

दिल्ली सरकार दुनिया को चमचमाती दिल्ली की तस्वीर दिखाती है, जबकि ज़्यादातर आबादी को अँधेरे में धकेल दिया गया है, जिसकी बुनियादी ज़रूरतें तक पूरी नहीं हो पाती हैं। रोज़ 700 लीटर पानी मुहैया कराने का वायदा करने वाली केजरीवाल सरकार 10 लीटर पानी तक के लिए लोगों को तरसा रही है। आइए देखते हैं कि दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों में पानी की क्या हालत है:

सूरज पार्क, गड्ढा बस्ती दिल्ली के बादली औद्योगिक क्षेत्र के निकट बसा मज़दूर इलाक़ा है जहाँ क़रीब 15-20 हज़ार लोग रहते हैं, जो ज़्यादातर कारख़ानों में, दिहाड़ी पर और कोठियों में काम करते हैं। इस इलाक़े में पानी की भयानक क़िल्लत है। पाइपलाइन बिछी होने के बाद भी उनमें पानी नहीं आता है। जहाँ तक सरकारी पाइपलाइन नहीं पहुँची है, वहाँ लोगों ने ख़ुद पैसे लगाकर पाइप मेन बूस्टर से जोड़ा, पर ख़र्च करने के बावजूद पानी नहीं आया। यहाँ पानी आने का कोई समय नहीं है। सुबह से लेकर रात तक पानी के लिए भागमभाग चलती है। लोगों को नहाने तक के लिए पर्याप्त पानी नहीं मिलता है। इलाक़े के विधायक व पार्षद बार-बार शिकायत करने के बाद भी कान में तेल डालकर बैठे हैं और इतनी समस्या होने के बावजूद इलाक़े के लोगो से नहीं मिलते हैं।

बवाना औद्योगिक क्षेत्र से सटे मज़दूर इलाक़े मेट्रो विहार की भी यही हालत है। बसने के 20 साल बाद यानी पिछले साल यहाँ पाइपलाइन बिछाने की शुरुआत हुई, पर अभी तक सिर्फ़ फ़ेज़-1 के एक ब्लॉक में यह काम हो पाया है, इसके अलावा फ़ेज़-2 पूरा बाक़ी है। यहाँ भी बिछे हुए पाइपलाइन में अभी तक पानी नहीं आया है। कहीं-कहीं अगर नल में पानी आता भी है, तो वह इतना गन्दा होता है कि उसमें और नाली के पानी में ज़्यादा अन्तर नहीं होता। बहुत-से मज़दूर फ़ैक्ट्री से ही बीस-तीस लीटर पानी ढोकर लाते हैं। पानी की क़िल्लत से बचने के लिए लोगों ने सरकारी पानी का कार्ड भी बनवाया हुआ है, जिससे वे पानी ख़रीदकर पीते हैं और एक बड़ी आबादी प्राइवेट में पानी बेचने वालों से 25 रुपये में 20 लीटर पानी ख़रीद कर पीती है। सोचिए मेहनत से कमाये गये महीने के सात-आठ हज़ार रुपये में से 500-1000 रुपये लोगों को पानी ख़रीदने में ख़र्च करने पड़ते हैं। यहाँ निगम-पार्षद भाजपा के और विधायक आम आदमी पार्टी के हैं। दोनों अपने ऊपर के नेताओं की तरह आरोप-प्रत्यारोप का खेल खेलते रहते हैं और इनके बीच जनता पिसती रहती है। इसी समस्या को लेकर भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा पार्षद का घेराव भी किया गया, पर विपक्षी पार्टी को दोष देने के अलावा उसके पास कहने को कुछ भी न था।

इसी तरह उत्तर-पूर्वी दिल्ली के एक अन्य इलाक़े शाहाबाद डेरी को बसे हुए पचास साल होने को आये हैं, लेकिन यहाँ आज तक पीने के पानी की कोई सुविधा नहीं है। आज भी यहाँ लोग टैंकर का पानी पीने को मजबूर हैं। टैंकर की आवर्तिता लोगों के अनुपात में बहुत कम है, तीन से चार गलियों पर सप्ताह में दो बार टैंकर आता है और कहीं-कहीं सप्ताह में बस एक दिन आता है। टैंकर का पानी कितना 'शुद्ध-साफ़' है इसका अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि हर बार गर्मी के मौसम में इलाक़े में मरने वालों की संख्या बढ़ जाती है। पिछले साल एक सप्ताह में उल्टी, दस्त, बुख़ार के कारण 30 लोगों की मौत हुई थी। साथ ही इस इलाक़े में अधिकतर लोग लिवर सम्बन्धी बीमारियों से भी ग्रसित हैं। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा इलाक़े में पानी की समस्या को लेकर कई बार विधायक का घेराव भी किया जा चुका है, पर हमेशा की तरह उसके सारे आश्वासन झूठे ही निकलते हैं।

ऐसे ही हालात हर मज़दूर बस्ती के हैं। अगर एकजुट होकर साफ़ और पर्याप्त पानी की माँग नहीं उठायी गयी तो आने वाले दिनों में यह समस्या और बड़ी बन जाएगी।

**– बिगुल संवाददाता**

# "सुशासन बाबू" के राज में पटना में पीने के पानी के लिए जनता को आन्दोलन करना पड़ रहा है!

कोरोना महामारी की दूसरी लहर के दौरान सरकार द्वारा थोपे गए अनियोजित लॉकडाउन के समय भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (आरडब्ल्यूपीआई) द्वारा पटना के विभिन्न इलाक़ों में एक तरफ़ जन सहयोग के माध्यम से राशन आदि ज़रूरी सामग्री पहुँचाने का काम जारी था वहीं दूसरी तरफ़ स्वास्थ्य के राष्ट्रीकरण की माँग समेत अन्य माँगों को लेकर जन स्वास्थ्य अधिकार मुहिम भी चलाया जा रहा था। इस अभियान के दौरान मैनपुरा एवं कुर्जी बाँध पर रहने वाले लोगों ने पानी की समस्या के बारे में बताया। ज्ञात हो कि इस इलाक़े मे रहनेवाली आबादी के पुरुष मुख्यत: रेहड़ी खोमचा लगाने का काम करते हैं व महिलाएँ घरों मे झाड़ू-पोछा का काम करती हैं। जाँच-पड़ताल के दौरान पता चला कि मैनपुरा मोहल्ले के कनुआना गली जोकि पटना नगर निगम के वार्ड संख्या 22 C में पड़ता है। इस गली पानी के लिए एकमात्र चापाकल है। इसी चापाकल पर गली के 50 से अधिक घर जिसमें लगभग 300 से 400 आबादी पानी के लिए निर्भर हैं। अगर कभी भी चापाकल खराब हो जाता है तो लोग सिर पर बर्तन रखकर दूर से पानी भरने के लिए मजबूर होते हैं। स्थानीय लोग इस समस्या को वार्ड के पार्षद के पास अतीत मे कई बार गए परन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया। पिछले कुछ दिनों से यह चापाकल भी ख़राब हो गया था। आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं ने नौजवान भारत सभा के सदस्यों के साथ मिलकर पूरे इलाक़े में हस्ताक्षर अभियान चलाकर वार्ड पार्षद को लिखित तौर पर ज्ञापन दिया। ज्ञापन में यह माँग की गयी कि इलाक़े के एक-एक घर में पाइप लाइन बिछाकर एवं नल लगवाकर सप्लाई के पानी पहुँचाने की व्यवस्था की जाये। संगठन की ताक़त एवं लोगों की एकजुटता के आगे मजबूर होकर पार्षद के प्रतिनिधि ने इस माँग को भविष्य में पूरा करने का आश्वासन दिया और तात्कालिक तौर पर उस गली में चापाकल के जगह मोटर एवं टंकी लगवाने की बात कही एवं अगले ही दिन से टंकी लगवाने का कार्य शुरू हो गया। इस घटना के बाद वार्ड पार्षद के परिवार के सदस्य संगठन के कार्यकर्ताओं को फूटी निगाह से देखने लगे तथा इलाक़े के कुछ लोगों को अलग से बुलाकर संगठन के लोगों से सम्पर्क करने से मना करने लगे।

इसके बाद पूरे इलाक़े में एकजुटता के बदौलत मिली आंशिक जीत एवं इलाक़े में व्याप्त विभिन्न समस्याओं पर संघर्ष के लिए जनकमेटी बनाने के महत्व को लेकर पर्चा निकालकर प्रचार अभियान चलाया गया। कनुआना गली के बाद इसके नजदीक मे स्थित कुर्जी मोड़ से लेकर एलसीटी घाट तक बाँध पर रहने वाले सैकड़ों लोगों ने भी अभियान के दौरान पानी की समस्या के बारे में आरडब्ल्यूपीआई कार्यकर्ताओं को बताया। इस इलाक़े की समस्या के बारे में जाँच-पड़ताल की गयी। जाँच-पड़ताल के बाद यह पता चला कि सप्लाई वाटर के पाइपलाइन एवं नल की पहुँच हर एक घर में नहीं है। जहाँ इसकी पहुँच है अभी वहाँ पानी ठीक से नहीं पहुँचता। कई जगहों पर लोग सड़क के दूसरी तरफ़ से बर्तन में पानी भरकर लाते हैं। जाँच-पड़ताल के बाद यह साफ़ हो गया कि इलाक़े में पानी की काफ़ी क़िल्लत है। यह इलाक़ा भी पटना नगर निगम के वार्ड संख्या 22C में ही पड़ता है। इस इलाक़े के लोग भी कई बार वार्ड पार्षद के यहां गए परन्तु उसने इस समस्या की ओर कभी अपना ध्यान नहीं दिया। आरडब्ल्यूपीआई के कार्यकर्ताओं ने पूरे इलाक़े मैं घर घर जाकर हस्ताक्षर अभियान चलाया। हस्ताक्षर अभियान सम्पन्न होने के बाद पूरे इलाक़े की एक बैठक बुलायी गयी। आपसी एकजुटता क़ायम करते हुए संघर्ष को आगे बढ़ाया जा सके इसके लिए बैठक में एक अस्थाई जनकमेटी गठन किया गया। इसके बाद सभी लोग वार्ड पार्षद कार्यालय का घेराव करने गए। वार्ड पार्षद कार्यालय में पार्षद से मुलाक़ात नहीं हुई परन्तु पार्षद प्रतिनिधि मिले। पार्टी कार्यकर्ताओं के साथ लोगों की भीड़ देखकर पहले तो बहाना बनाते हुए कहना शुरू किया कि यह समस्या पार्षद के ज़िम्मे नहीं आता आप लोग विधायक के पास जाइए। इस पर उसे जवाब दिया गया कि पानी की समस्या को पटना नगर निगम ही देखता है यह पार्षद का ही विषय है। इसके बाद उसने कहा पार्षद को फ़ण्ड ही नहीं मिलता फिर उन्हें बताया गया कि नगर निगम के बजट के अनुसार एक पार्षद को 1 वर्ष में 80 लाख रुपया आवण्टित करवाने का अधिकार है। इसके बाद लोगों के सामने उसके पास जब कहने के लिए कुछ नहीं बचा तो कहने लगे आप लोग भोली-भाली जनता को भड़काते हैं, नेतृत्व एवं जनता के बीच दरार डालने का प्रयास करते हुए फिर उन्होंने कहना शुरू किया लोगों की समस्या है लोग बोले आप लोग कौन होते हैं हम से सवाल करने वाले। इसका जवाब वहां खड़े लोगों ने दिया ये लोग हमारे लिए लड़ने वाले लोग हैं, हमारे अपने लोग हैं। अब पार्षद प्रतिनिधि को कहने के लिए कुछ नहीं बचा तो उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा कि एक सप्ताह में इलाक़े के तीन से चार चिन्हित स्थानों पर मोटर एवं टंकी लगवाने का काम शुरु करवा देंगे। इस आश्वासन के एक सप्ताह बीत जाने के बाद भी कोई काम जब शुरू नहीं हुआ तब लोगों को पुनः एकजुट करके वार्ड पार्षद कार्यालय का घेराव किया गया। इस बार पार्षद प्रतिनिधि के तेवर काफ़ी बदले हुए थे। कार्यालय में लोगों को सीधे धमकी देने एवं डराने का काम करते हुए पार्षद के परिवार के सदस्यों ने लोगों से कहा कि अगर आपलोग इन लोगों (पार्टी कार्यकर्ताओं) के साथ आयेंगे तो हम कुछ भी नहीं करेंगे। इसके बाद पार्टी कार्यकर्ताओं के साथ बदतमीजी भी करने लगे जिसका तीव्र विरोध किया गया। वापस इलाक़े में आकर एक बैठक की गई जिसमें यह फैसला लिया गया कि अब इस समस्या को अगले सप्ताह पटना नगर निगम के मेयर के समक्ष उठाया जाएगा। तब तक अधिक से अधिक लोगों का जुटान हो सके इसके लिए इलाक़े में प्रचार अभियान चलाया जाएगा। ठीक इसी बीच पार्षद प्रतिनिधि ने इलाक़े के कुछ ढुलमुल और दलाल क़िस्म के लोगों के बूते आपसी एकजुटता तोड़ने में कामयाबी हासिल कर ली। पार्षद प्रतिनिधि इन लोगों के साथ मिलकर इलाक़े में घूमा, घूमने के दौरान कुछ स्थानों पर मोटर एवं टंकी लगाने की बात कही परंतु जो माँग थी कि पानी हर घर तक पहुँचे इस पर साफ़-साफ़ कुछ भी नहीं कहा। इन सबके साथ साथ पार्टी कार्यकर्ताओं के बारे में इलाक़े के लोगों के समक्ष काफ़ी आपत्तिजनक भाषा का प्रयोग किया। उसने पुनः लोगों को डराने-धमकाने की कोशिश की। अगले ही दिन कुछ असामाजिक प्रवृत्ति के लोग पार्टी कार्यकर्ताओं को इलाक़ा ख़ाली करने और जान से मार देने की धमकी देने लगे। पर बिना इन सब से डरे पार्टी कार्यकर्ताओं ने पहले से अधिक सघन तरीके से इलाक़े में पानी की समस्या पर लोगों के बीच अभियान चलाने का काम जारी रखा। इलाक़े के अधिकतर लोग अब भी पार्टी के कार्यकर्ताओं के साथ है। बताते चलें कि वार्ड पार्षद का संबंध बिहार की सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी राजद से है, इस कारण से पार्षद व उसके गुर्गों को राजनीतिक शह मिली हुयी है, जिसका ये लोग इस्तेमाल करते हैं।

रिपोर्ट लिखे जाने तक इलाक़े में एक जगह मोटर लगाने का काम जारी है। लोगों का यह साफ़ मानना है कि आज मोटर और टंकी लगने का जो भी काम हो रहा है इसमें पार्टी के संघर्ष की अहम भूमिका है क्योंकि पहले भी इस समस्या को पार्षद के समक्ष उठाया जा चुका है परन्तु उसने इस मसले पर कुछ भी नहीं किया था। हर घर तक पानी की पहुँच हो एवं इस समस्या का पूरी तरह से समाधान हो इसके लिए संघर्ष जारी है। पार्टी के कार्यकर्ता इलाक़े में लगातार लोगों के बीच जा रहे हैं तथा लोगों से यह बात कर रहे हैं कि इलाक़े में जितनी भी बुनियादी समस्याएँ हैं उसको दूर करने के लिए संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए मोहल्ले की जन कमेटी का निर्माण करना बेहद ज़रूरी है। जन कमेटी के निर्माण के बाद यह भी ज़रूरी होगा कि इस कमेटी की बैठक एक निश्चित समय अन्तराल पर हो, उस बैठक में लोग सामूहिक तौर पर फ़ैसले ले सकें तथा आगे की कार्यवाही को अंजाम दे सकें। इलाक़े के लोग धीरे-धीरे जान कमेटी के महत्व को समझ रहे हैं।

इस घटनाक्रम मे एक बात और भी स्पष्ट कर दी कि सत्ता के किसी भी स्तर पर अपना कब्ज़ा जमाएं बैठे कुर्सीधारी लोग, आम मेहनतकश जनता का बुनियादी हक मारने मे कोई कोर कसर नहीं छोडते हैं। जनता की एकजुटता को देखते ही इनका कलेजा काँप जाता है। जनता की एकजुटता तोड़ने के लिए ये सत्ताधारी हरेक हथकण्डा अपनाते हैं। लेकिन हमें इनके हथकण्डों का जवाब हमें अपनी चट्टानी एकता और संघर्ष से देना होगा।

**– बिगुल संवाददाता**

# जनता के संघर्ष को कुचलकर खोरी गाँव के हज़ारों घर उजाड़े गये

# बेघर किये गये डेढ़ लाख लोग बारिश व महामारी में दर-दर भटकने को मजबूर!

**– लता, सार्थक**

कोरोना के दो साल अगर किसी पर सबसे भारी बीते हैं तो वह है भारत की मज़दूर व मेहनतकश आबादी। छँटनी-तालाबन्दी, 2 करोड़ से ज़्यादा लोग पहली लहर में और उससे भी अधिक दूसरी लहर में बेरोज़गार हुए हैं। बेरोज़गारी के अलावा मेहनतकश आबादी महँगाई, बीमारी और भुखमरी की मार झेल रही है। इस आबादी को किसी भी तरह की कोई राहत नहीं है और अगर ऐसे में सिर की छत भी छिन जाये तो इसे क्या कहा जाये! दिल्ली-हरियाणा सीमा पर बसे खोरी गाँव के लोगों के साथ ऐसा ही कुछ हुआ है। दूसरी लहर से तबाह-बर्बाद आबादी 6 जून को लॉकडाउन खुलने पर अपनी-अपनी रोज़ी की तलाश में दर-दर भटकने निकल ही रही थी कि 7 जून को देश के सर्वोच्च न्यायालय ने खोरी की लगभग डेढ़ लाख आबादी को बेघर करने के लिए पूरे गाँव को तोड़ने का आदेश दे दिया। सुप्रीम कोर्ट ने फ़रीदाबाद नगर निगम को गाँव में तोड़-फोड़ करके उसे खाली कराने के लिए 6 सप्ताह का समय दिया था। गाँव की ज़मीन को अनाधिकृत अतिक्रमण बताते हुए सर्वोच्च न्यायालय का कहना था कि यह जंगल की ज़मीन है जिसपर बने घर ग़ैर-क़ानूनी हैं अत: इन्हें पर्यावरण की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए खाली कराया जाये।

यदि सुप्रीम कोर्ट की माने तो खोरी गाँव जो 170 एकड़ में बसा है उसमें दस हज़ार घर हैं। लेकिन 14 जुलाई से लगातार जारी तोड़-फोड़ को देखें जो 30 जुलाई को इस रिपोर्ट के लिखे जाने तक यानी तक जारी थी, तो सुप्रीम कोर्ट के आँकड़े दुरुस्त नहीं लगते। 14 जुलाई से हर रोज़ खोरी गाँव में 12 से 15 जेसीबी मशीनें आती हैं और सुबह 9-10 बजे से लेकर शाम को 5 बजे तक वहाँ बिना रुके मकानों को तोड़ती रहती हैं। इतने के बाद भी आज की तारीख़ में सभी मकान नहीं गिराये जा सके हैं, इसलिए सुप्रीम कोर्ट ने फ़रीदाबाद नगर निगम को तोड़-फोड़ का काम पूरा करने के लिए चार सप्ताह का समय और दे दिया है।

7 जून नोटिस आने के बाद जनता में एक बेचैनी थी और वह संघर्ष के माध्यम तलाश रही थी। 30 जून को गाँव में हुए एक बड़े प्रदर्शन पर पुलिस ने बर्बर लाठी चार्ज किया और समर्थन में पहुँचे कई संगठनों के कार्यकर्ताओं को हिरासत में भी लिया। दो स्थानीय महिलाओं और छात्र कार्यकर्ता रविन्दर व राजबीर को गम्भीर चोटें आयीं। गाँव की ओर से सुप्रीम कोर्ट में मुक़दमा लड़ रहा एनजीओ भी इस प्रदर्शन में शामिल था। प्रदर्शन में किसान नेता गुरनाम सिंह चढूनी लगभग दोपहर बाद पहुँचे और सरकार व प्रशासन के साथ बातचीत करने के लिए पाँच लोगों की एक समिति का चयन किया गया। कहने को तो यह समिति जनता की सहमति से बनी थी लेकिन में असल में बन्धुआ मज़दूर मोर्चा (एनजीओ) का खोरी में काम देखने वाले निर्मल ने मनमाने ढंग से ये नाम तय करवाये थे।

आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए 1 जुलाई को भोगल में हुई मीटिंग में बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से गली-गली में मीटिंग करके मोहल्ला कमेटियाँ बनाने की बात रखी गयी ताकि आन्दोलन की कार्रवाइयों और इससे जुड़े फ़ैसले लेने में स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी हो सके। साथ ही संगठनों के साथ तालमेल बनाने के लिए संघर्ष समिति गठित करने का भी प्रस्ताव बिगुल और कुछ अन्य संगठनों की ओर से दिया गया। इसी निर्णय के अनुसार बिगुल मज़दूर दस्ता के साथी अगले दिन से ही खोरी में लोगों के बीच रुककर गली-गली में नुक्कड़ सभाएँ करके व्हाट्सऐप ग्रुप और मोहल्ला कमेटियाँ बनाने के काम में लग गये। कुछ अन्य जनसंगठनों के कार्यकर्ता भी बीच-बीच में इसमें शामिल होते रहे। आन्दोलन संगठित होने से रोकने के लिए पूरे गाँव में धारा 144 लगा दी गयी थी। इसके बावजूद लोगों ने भारी संख्या में समितियों के निर्माण और सदस्यों के चयन में उत्साह दिखाया। पूरे खोरी में सरगर्मी आ गयी। लेकिन ये कार्रवाइयाँ शुरू होते ही एनजीओ वाले निर्मल का रुख़ बदलने लगा। दरअसल उसे वहाँ पर आन्दोलन बस इतना चाहिए था कि आने वाले दिनों में जब जनता इन पर सवाल उठाये या अन्य जगहों में विस्थापित हुई आबादी के बीच ये काम करने जायें तो अपना प्रमाणपत्र तैयार रखें कि हमने तो विरोध किया था। वह बात-बात पर नसीहतें देता कि ज़्यादा लोगों को इकट्ठा न करो और गर्म-गर्म बातें नहीं करो, आदि।

इस बीच हमने मोहल्ला समितियाँ बनाने और 7 जुलाई को तय प्रदर्शन की तैयारी का काम पूरी ऊर्जा के साथ जारी रखा। सुबह 6 बजे से मीटिंगों की शुरुआत होती और दोपहर तक लोगों को शाम को रखी गयी समिति सदस्यों के चयन की मीटिंग की सूचना दी जाती। पूरे महल्ले की गलियों में जा-जाकर लोगों को इकट्ठा किया जाता, उनके फ़ोन नम्बर लिये जाते और अपने बीच से ऐसे सदस्य का नाम तय करके आने को कहा जाता था जिसपर सभी को भरोसा हो और जो व्हाट्सऐप चला सके। चर्च कॉलोनी, बिलाल मस्जिद, हनुमान मन्दिर, लेबर चौक, ट्रांसफ़ार्मर के पास आदि इलाक़ों में बिगुल की ओर से शाम की मीटिंगें आयोजित की गयीं जिसमें बड़ी संख्या में लोगों ने हिस्सा लिया और अपने बीच से सदस्यों का चयन किया।

बंगाली कॉलोनी, खड्डा कॉलोनी और सरदार कॉलोनी के सदस्यों के चयन में भी अन्य संगठनों के साथ बिगुल के साथी लोगों के बीच रहे। यह प्रक्रिया आगे बढ़ ही रही थी लेकिन इसी बीच पाँच सदस्यों की समिति ने 4 जुलाई को सरकार से बातचीत शुरू कर दी। 'जहाँ झुग्गी वहीं मकान' की साझा माँग पर बनी समिति ने मनमाने ढंग से पुनर्वास को अपनी मुख्य माँग बना लिया। इसकी ख़बर हमें अख़बारों से मिली। बिगुल की ओर से हमारा स्पष्ट मानना था कि इनकी धोखेबाज़ियों को जनता के सामने तत्काल उजागर करना चाहिए। अन्य संगठनों की राय थी कि पुनर्वास के धोखे को बताया जाये लेकिन समिति को सीधे लक्ष्य न किया जाये। उनके अनुसार इससे जनता में फूट पड़ जायेगी। लेकिन इस समिति को लेकर जनता पहले ही बहुत सन्तुष्ट नहीं थी क्योंकि इनका धोखाधड़ी का पुराना इतिहास रहा था। पुनर्वास की बात करने वालों का विरोध करते हुए और 'जहाँ झुग्गी वहीं मकान' की स्पष्ट माँग पर ज़ोर देते हुए पर्चा निकाल कर खोरी में बाँटा गया।

निर्मल तथा कुछ अन्य अवसरवादी संगठनों की ओर से तमाम झूठ और भ्रम फैलाने और पुलिस की नाकाबन्दी तथा डराने की कोशिशों के बावजूद 7 जुलाई को खोरी में अम्बेडकर पार्क के बाहर एक बड़ी सभा हुई जिसमें सैकड़ों निवासियों ने भाग लिया। कई जनसंगठनों के कार्यकर्ता भी एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए इसमें शामिल हुए थे।

लेकिन 7 जुलाई की सभा में बिगुल की ओर से पुनर्वास की माँग की धोखाधड़ी लोगों के सामने रखने के बाद भी वहाँ मौजूद कुछ जन संगठनों के लोग पुनर्वास की माँग पर होने वाले प्रदर्शन में जाने की सहमति बनाने लगे। बिगुल की ओर से इसका कड़े शब्दों में प्रतिवाद करने के बावजूद आईएमके, डीएसयू और पीएसयू के कार्यकर्ता एक ऐसे व्यक्ति के साथ पुनर्वास की माँग पर फ़रीदाबाद में होने वाले प्रदर्शन जाने के लिए सहमत हो गये जिसकी जनता में पहचान की हालत यह थी कि सभी उसे पुलिस का आदमी समझ रहे थे।

जनता के बीच यदि कोई अन्तरविरोध पैदा होता है तो किसी भी क्रान्तिकारी राजनीति की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि उस अन्तरविरोध के जनविरोधी पहलू को तत्काल जनता के सामने उजागर करे, चाहे उस पहलू का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग कितने भी शक्तिशाली या जनता में पैठे हुए क्यों न हों। जनविरोधी पहलू के स्वयं स्पष्ट होने का इन्तज़ार करना या जनता से स्वयं उसे समझ लेने की उम्मीद करना जनता के पीछे चलना होगा न कि जनता को क्रान्तिकारी नेतृत्व देना। यदि जनता स्वयं सब समझ लेगी, तो फिर किसी भी क्रान्तिकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता ही क्यों होगी।

7 जुलाई को ही गाँव में भाजपा के पूर्व सांसद उदित राज की बहू मीनू वर्मा और भांजे संजय राज ने एक मीटिंग रखी थी। जनता को ऐसे नेता किस तरह मूर्ख बनाते हैं इस मीटिंग में यह झलक देखने को मिली। मीनू ने दावा किया कि एक दिन पहले खोरी गाँव के बाहर आकर खड़ी हुई पुलिस और सीआरपीएफ़ की सैकड़ों गाड़ियाँ और 15 से अधिक जेसीबी बिना कुछ किये इसलिए वापस चली गयीं क्योंकि हमने इसे रुकवाया है। जबकि असलियत यह थी कि पुलिस और जेसीबी सिर्फ़ मॉक ड्रिल के लिए वहाँ आयी थीं। इन्होंने लोगों के सामने यह भी हाँका कि कल यानी 8 जुलाई को बस्ती से 5000 से अधिक लोग जन्तर-मन्तर पहुँच जायें तो इसके बाद हम आपका केस पक्के तौर पर जिता देंगे।

उसी रात बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से स्थानीय लोगों की मीटिंग रखी गयी। सभी लोग संजय राज के इस दावे की वजह से दुविधा में थे कि 5000 की संख्या में प्रदर्शन में जाने पर वह केस जितवा देगा। बिगुल की ओर से यह राय रख दी गयी कि ये लोग झूठे हैं और आपको धोखा दे रहे हैं। लेकिन प्रदर्शन 'जहाँ झुग्गी वहीं मकान' के नारे पर था और इस माँग पर खोरी की जनता अगर प्रदर्शन में जा रही है, तो हम आपके साथ जायेंगे। 8 जुलाई को उदित राज के साथ मिलकर बहू-बेटे ने जनता को ख़ूब मूर्ख बनाया। हज़ारों लोग अपने-अपने पैसे ख़र्च करके किसी तरह बस-ऑटो में लदकर जन्तर-मन्तर पहुँच गये, जिसकी उम्मीद शायद इन झूठे आयोजकों को नहीं थी और इसलिए उन्होंने पुलिस के साथ मिलकर इस प्रदर्शन को तहस-नहस करने की साज़िश रची। प्रदर्शन हुए बिना लोगों को बसों में भर-भर कर थाने लाया गया या वापस खोरी पहुँचा दिया गया। थाने के अन्दर ही बिगुल की ओर से इन पर सवाल उठाये जाने और दूसरों को भी सवाल पूछने के लिये कहने पर संजय राज और मीनू भड़क रहे थे। मज़े की बात यह थी कि उस समय मौजूद अन्य संगठनों के लोग भी हमारे सवाल उठाने से असन्तुष्ट थे। अब इन दोनों ने यह प्रचार करना शुरू कर दिया कि 8 जुलाई का प्रदर्शन मुख़बिरों की वजह से असफल हो गया, लेकिन फिर से प्रदर्शन किया जायेगा। अगले ही दिन यह भी साफ़ हो गया कि ये लोग आन्दोलन में क्यों घुसे थे जब इन्होंने कोर्ट केस के नाम पर 15 लाख रुपये जमा कराने की बात शुरू कर दी। हालाँकि ज़्यादातर लोग इनके गोरखधन्धे को तब तक समझ चुके थे लेकिन फिर भी एक इलाक़े से लोगों ने काफ़ी पैसे इकट्ठा करके इन्हें दे दिये। आज सारी खोरी टूटी पड़ी है और दुर्भाग्य से टूटने की शुरुआत उसी इलाके से हुई जहाँ उदित राज और इसके रिश्तेदारों के समर्थक सबसे ज़्यादा संख्या में थे। लेकिन वे इन टूटे घरों को देखने तक नहीं आये।

कहने की ज़रूरत नहीं कि इनका चरित्र उजागर होने तक इन्तज़ार करने के बजाय जनता को इनके प्रति पहले से आगाह करने का हमारा क़दम सही था। लेकिन आईएमके, डीएसयू और पीएसयू जैसे संगठनों का कहना था कि इस तरह खुलेआम सवाल उठाने से जनता में भ्रम फैलता है, लोग बँट जाते हैं बल्कि आन्दोलन भी कमज़ोर हो जाता है। इतना ही नहीं वे उदित राज, मीनू वर्मा और संजय राज की धोखेबाज़ी पर मज़दूर बिगुल के फ़ेसबुक पेज पर लिखे पोस्ट को हटाने की बात करने लगे और वह भी बेहद ही मज़ाक़िया तर्क देते हुए कि यह संयुक्त मोर्चे के नियमों का उलंघन है। क्या कोई भी संयुक्त मोर्चा किसी संगठन की राजनीतिक समझदारी और उसके सांगठनिक तौर-तरीक़े को नियंत्रित करने का अधिकार रखता है? क्या संयुक्त मोर्चे के नाम पर कोई संगठन अपनी राजनीतिक समझदारी अभिव्यक्त करने का काम स्थगित कर देगा? मज़ेदार बात यह है कि यही लोग जेल में मिले खोरी के लोगों के सामने मीनू की चर्चा होने पर और खोरी मज़दूर आवास संघर्ष समिति का उनके साथ होने की बात उठने पर अपने आप को अलग दिखाने के लिए बिगुल की इसी पोस्ट का हवाला दे रहे थे।

8 जुलाई के निराशाजनक अनुभव के बाद भी जनता अपने घरों को बचाने के लिए लड़ने के लिए तैयार थी। व्यापक सहमति के आधार पर फ़रीदाबाद नगर निगम मुख्यालय घेरने का फ़ैसला किया गया। लेबर चौक, हनुमान मन्दिर और चर्च कॉलोनी में मीटिंग करने के बाद लोगों ने बुधवार यानी 14 जुलाई का दिन इसके लिए तय किया। उस दिन बड़ी तादाद में पुलिस के साथ 14-15 जेसीबी मशीनें खोरी में आ गयीं। लोग जब तक एकत्र होते, तोड़-फोड़ की कार्रवाई शुरू हो चुकी थी। अगले दिन यानी 15 तारीख़ को भोर से ही लोग जेसीबी आने के रास्ते पर जाकर बैठ गये। महिलाएँ बड़ी संख्या में आगे थीं। बिना किसी उकसावे के पुलिस ने लाठी चार्ज किया और 6 खोरी निवासियों जिसमें 3 स्त्रियाँ थीं और तीन राजनीतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर ले गयी। राजनीतिक कार्यकर्ताओं में बिगुल के सार्थक, डीएसयू के प्रभाकर और आईएमके के नितेश शामिल थे। हिरासत में सभी राजनीतिक कार्यकर्ताओं के साथ

(पेज 6 पर जारी)

# हरिद्वार के सिडकुल में सत्यम ऑटो के मज़दूरों के संघर्ष से मिले कुछ सबक़

हरिद्वार स्थित सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र अपनी चमक-दमक, चौड़ी सड़कों, जगमगाती लाइटों, सड़क के बीच व दोनों किनारों पर बनी पेड़-पौधों की क्यारियों के कारण भव्य, सुन्दर व बहुत ही शान्त-सा प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि इस औद्योगिक क्षेत्र में तो चारों ओर हरियाली के साथ ख़ुशहाली भी मौजूद होगी। लेकिन आपका यह भ्रम जल्दी ही टूट जाता है। 22 जुलाई की सुबह पाँच बजे इस औद्योगिक क्षेत्र की शान्ति को पुलिस की लाठियों, स्त्रियों और बच्चों की चीख़ों ने भंग कर दिया। पिछले चार साल से सत्यम ऑटो कम्पोनेण्ट प्राइवेट लिमिटेड के 300 स्थाई मज़दूर अपने परिवार के साथ बहाली की माँग पर आन्दोलन कर रहे थे और कम्पनी प्रबन्धन और प्रशासन की मिलीभगत से पुलिस इन्हीं मज़दूरों को गिरफ़्तार करके कम्पनी गेट से हटा रही थी।

### क्या है मामला?

बात आज से छह साल पुरानी 29 जुलाई 2015 की है। जब सत्यम ऑटो कम्पोनेण्ट प्राइवेट लिमिटेड के मज़दूरों ने नये वेतन समझौते के लिए एक 18 सूत्री माँग-पत्र कारख़ाना प्रबन्धन को दिया। कई दौर की वार्ता के बावजूद भी प्रबन्धन माँगों को मानने के लिए तैयार नहीं हुआ। वार्ता से नतीजा न निकलने के कारण ये विवाद औद्योगिक न्यायाधिकरण हल्द्वानी में ले जाया गया। एक तरफ़ ये मामला कोर्ट में चला गया और दूसरी तरफ़ प्रबन्धन द्वारा आन्दोलन में तोड़-फोड़ की साज़िश भी चलती रही। जैसा कि अक्सर होता रहा है कि जिन ट्रेड यूनियनों में जनवाद का अभाव हो या नेतृत्व पर आम मज़दूरों की चौकसी न हो तो वहाँ नेतृत्व के एक हिस्से के बिक जाने, दलाल या समझौतापरस्त हो जाने की सम्भावना काफ़ी बढ़ जाती है। मालिक वर्ग उनमें फूट पैदा करके भी आन्दोलन को तोड़ देता है। ऐसी ही स्थिति यहाँ भी बनी। प्रबन्धन ने नेतृत्व के कुछ मज़दूरों को अपने पक्ष में करके 2 मार्च 2017 को गोपनीय तरीके से एक समझौता कर लिया। यह बात पता चलते ही अन्य मज़दूरों ने इस समझौते का विरोध किया और अपनी लिखित आपत्ति श्रम अधिकारियों को दी। इससे नाराज़ प्रबन्धन ने 17 अप्रैल 2017 को विरोध करने वाले 300 मज़दूरों की जबरन गेटबंदी कर दी और उनकी कम्पनी में प्रवेश पर रोक लगा दी। नवम्बर 2017 से इन मज़दूरों का नाम भी मस्टर रोल यानी कम्पनी रिकॉर्ड से हटा दिया।

तभी से सत्यम ऑटो कम्पोनेण्ट प्राइवेट लिमिटेड के मज़दूर कभी फ़ैक्टरी गेट पर, कभी सहायक श्रम आयुक्त कार्यालय पर, कभी डी एम कार्यालय पर, कभी सिडकुल हरिद्वार के विभिन्न इलाक़ों में धरना-प्रदर्शन-रैली करते आ रहे हैं। इस साल 8 अप्रैल को डी एम हरिद्वार द्वारा काम पर रखवाने का मौखिक आश्वासन मिला। लेकिन 3 महीना बीत जाने के बावजूद इन मज़दूरों की कार्य बहाली नहीं हुई। मजबूरन एक बार फिर से सत्यम ऑटो के मज़दूरों को अपना आन्दोलन शुरू करना पड़ा। 8 जुलाई को सुबह 4 बजे से ही सत्यम ऑटो के मज़दूर अपने परिवार की महिलाओं और बच्चों सहित कम्पनी के दोनों गेट पर बैठ गये। 9 जुलाई को भाजपा के विधायक और मंत्री का आश्वासन मिला कि उन्हें 3 दिन के भीतर काम पर रख लिया जायेगा, वे अपना आन्दोलन गेट छोड़कर भी जारी रख सकते हैं। लेकिन 13 जुलाई तक भी जब काम पर नहीं रखा गया तो मज़दूरों ने फिर से फ़ैक्टरी गेट जाम कर दिया। इस दौरान फ़ैक्टरी प्रबन्धन द्वारा मज़दूरों के ऊपर फ़ैक्टरी कर्मचारियों को बन्धक बनाये जाने की एफ़.आई.आर. करा दी गयी। 22 जुलाई को सुबह भारी पुलिस द्वारा मज़दूरों और उनके परिजनों को ज़बरदस्ती गेट से उठाकर गिरफ़्तार कर लिया गया। जिन 13 स्त्री-पुरुष मज़दूरों के नाम नामजद एफ़.आई.आर. की गयी थी उन्हें चालान काट कर जेल भेज दिया गया और बाक़ी मज़दूरों को निजी मुचलका भरवाकर छोड़ दिया गया।

### संघर्ष के चार साल! और हासिल...?

इसमें कोई दो राय नहीं कि सत्यम ऑटो के मज़दूरों ने निरन्तर बिना थके अपने आन्दोलन को जारी रखा है। लेकिन किसी भी आन्दोलन को अपने मुक़ाम तक पहुँचाने के लिए केवल धैर्य, अनुशासन और निरन्तरता ही काफ़ी नहीं होता। चार साल के इस आन्दोलन को अगर हम पीछे मुड़कर देखें, तो पायेंगे कि नेतृत्व ने मज़दूरों की एकता और उनकी ताक़त पर कम भरोसा करके शॉर्ट कट तरीके से अपनी माँगों को मनवाने का हरसम्भव प्रयास किया। सत्ताधारी भाजपा के पार्षद, विधायक, मंत्री से लेकर मुख्यमंत्री तक से जाकर उन्होंने मुलाक़ात की। विधायक, मंत्री और नौकरशाहों के मौखिक आश्वासनों पर ही उन्होंने आन्दोलन को आगे बढ़ाने के बजाय स्थगित कर दिया। इस आन्दोलन में भाँति-भाँति के अर्थवादी ट्रेडयूनियनवादी से लेकर भाजपा-कांग्रेस के नेता-मंत्री तक आकर लम्बे-चौड़े भाषण देते रहे और नेतृत्व उन्हीं पर ज़्यादा भरोसा करता रहा। आन्दोलन को वर्गीय नज़रिए से न देखकर वह व्यक्तियों और उनके पद-ओहदे के हिसाब से अपने आन्दोलन की गति और दिशा को तय करता रहा। चार सालों में नेतृत्व इस बात को नहीं समझ सका कि जिन पूँजीपतियों की सेवा के लिए ये तमाम चुनावबाज पार्टियाँ और वर्तमान भाजपा सरकार सत्ता में बैठी है वह कैसे मज़दूरों के हित में काम कर सकती है? सत्यम ऑटो के मज़दूरों की दूसरी दिक़्क़त संकीर्ण कारख़ानावादी चौहद्दी की मानसिकता भी है। अपने आन्दोलन को व्यापक बनाने और अन्य कारख़ानों के मज़दूरों का समर्थन पाने के लिए भी सत्यम ऑटो के मज़दूरों ने कोई प्रयास नहीं किया। यहाँ तक कि सत्यम ऑटो में ही काम कर रहे ठेका और अस्थाई मज़दूरों की माँगों को भी शामिल कर ज़ोरदार तरीक़े से उठाया जाता तो इन मज़दूरों का भी व्यापक समर्थन हासिल होता।

सत्यम ऑटो के मज़दूरों का यह आन्दोलन कहाँ तक जायेगा और क्या मुक़ाम हासिल करेगा, अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह ज़रूर कहा जा सकता है कि अगर सत्यम ऑटो के मज़दूर ट्रेड यूनियनवादी अर्थवादी राजनीति से किनारा करके संकीर्ण कारख़ानावादी सोच से बाहर निकलकर व्यापक मज़दूर वर्ग की एकता (स्थाई व अस्थाई मज़दूरों की भी) को क़ायम करते हैं, सत्ताधारी पार्टियों के नेताओं, संगठनों के पीछे जाने के बजाय अपनी वर्गीय एकजुटता के दम पर क्रान्तिकारी तरीक़े से इस आन्दोलन को आगे बढ़ाते हैं तो इस आन्दोलन का कोई नतीजा निकल सकता है, नहीं तो किसी छोटे-मोटे समझौते में बदलकर यह आन्दोलन टूट-फूट का शिकार होकर रह जायेगा।

**– बिगुल संवाददाता**

# जनता के संघर्ष को कुचलकर खोरी गाँव के हज़ारों घर उजाड़े गये

(पेज 5 से आगे)

पुलिस का बेहद क्रूर बर्ताव रहा, घण्टों तक इन्हें बेरहमी से पीटा गया। पुलिस हमेशा की तरह मूर्खतापूर्ण ढंग से यह सोच रही थी कि ऐसा करके वह इन कार्यकर्ताओं को जनता के संघर्ष के साथ खड़ा होने से रोक देगी। मगर दो दिन बाद ज़मानत मिलते ही सभी फिर से संघर्ष के लिए तैयार थे। हालाँकि 15 जुलाई को हुए प्रतिरोध के दमन के बाद लोगों का मनोबल बहुत कमज़ोर हो गया था और पुलिस प्रशासन का काम आसान। 27 जुलाई को लगभग एक तिहाई बस्ती उजाड़े जाने के बाद लोगों ने एक बार फिर हिम्मत बाँधी और डेढ़ हज़ार की संख्या में एकत्र होकर जेसीबी का रास्ता रोकने की कोशिश की। फिर से लाठी चार्ज हुआ और पाँच लोगों को पुलिस उठा ले गयी।

अब सुप्रीम कोर्ट ने तोड़-फोड़ पूरा करने के लिए फ़रीदाबाद नगर निगम को 4 सप्ताह का समय और दे दिया है। खोरी तिल-तिल कर मर रही है। लोग अपने टूटे घरों के पास तिरपाल या प्लास्टिक शीट डाल कर रह रहे हैं। प्रशासन ने विस्थापितों के लिए अस्थायी टेण्ट होने का दावा किया था लेकिन ऐसी कोई भी चीज़ वहाँ नहीं है। कोरोना की वजह से पहले ही लोगों का रोज़गार चला गया है। इनके पास धूप-बारिश में खुले आसमान के नीचे रहने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं रह गया है।

### समाहार

खोरी की जनता बहादुरी से लड़ी लेकिन कई ऐसे कारक ज़िम्मेदार रहे जिसने इस लड़ाई को अन्दर से कमज़ोर कर दिया था। कुछ की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। खट्टर सरकार, पुलिस और प्रशासन की ओर से जनता को एकजुट होने से रोकने की कोशिशें लगातार जारी रहीं। कई अफ़वाहें उड़ायी गयीं, भय का माहौल बनाया गया ताकि खोरी की एकता टूट जाये। कई इलाक़ों से लोगों को रातों-रात को उठाया जाता और कई दिनों तक परिवार वालों को उनकी कोई ख़बर नहीं मिलती। बिजली-पानी की सप्लाई काटने से शुरुआत हुई। नई खोरी और पुरानी खारी के बीच का भेद पैदा किया गया। यह कई स्तरों पर था। वर्ग और जीवन परिस्थितियों के संदर्भ में भी। पुरानी खोरी के एक बड़े हिस्से में सरकारी बिजली और पानी की सप्लाई थी। इनके बीच यह बात फैली थी कि टूटना तो सिर्फ़ नई खोरी को है। पुरानी खोरी नहीं टूटेगी। इस अफ़वाह का प्रचार पुलिस के मुखबिरों ने जमकर किया था। अक्सर पुरानी खोरी की आबादी आन्दोलनों में रुचि नहीं दिखाती थी और यहाँ तक अपने इलाक़ों में रखी गयी मीटिंगों का विरोध भी करती थी। नयी खोरी के लोग इस बात से नाराज़ रहते थे। जनता में पहला बँटवारा यहीं पर हो गया। बाद में लोग समझने लगे कि पूरी खोरी टूट रही है। लेकिन तब तक काफ़ी देर हो गयी थी।

दूसरा बँटवारा इस बात पर किया गया कि पुनर्वास उनका होगा जिनके पास फ़रीदाबाद का पहचान पत्र है। हरियाणा सरकार का जनसुविधाओं और योजनाओं के मामले में हमेशा से हाथ तंग रहा है जिसे ग़रीब मेहनतकश आबादी अच्छे से जानती है। चाहे स्वास्थ्य सुविधा हो, शिक्षा या परिवार कल्याण सम्बन्धी कोई योजना जो थोड़ा-कुछ हासिल है वह दिल्ली में हासिल है। इसलिए अधिकतर लोगों ने दिल्ली का पहचान पत्र बनवाया है। लेकिन करीब दस हज़ार कई लोगों के पास हरियाणा के भी पहचान पत्र हैं। हरियाणा सरकार ने ढबुआ कॉलोनी में मात्र 1400 मकान देने की बात कही है। लेकिन अब सारे घर टूट जाने तक भी कोई सर्वे नहीं हुआ है। स्पष्ट है कि पुनर्वास की बात बस लोगों को बाँटने के लिए की गयी थी, असल में सरकार का ऐसा कोई इरादा नहीं है। अभी तक का इतिहास बताता है कि जब कभी भी विस्थापन हुआ है, या तो पुनर्वास हुआ ही नहीं है और यदि हुआ भी है तो आबादी के दस प्रतिशत से भी कम का पुनर्वास हुआ है।।

खोरी में तोड़-फोड़ की यह कर्रवाई पहली बार नहीं हुई थी लेकिन अब यह आख़िरी ज़रूर है। लम्बे समय से यहाँ की आबादी टुकड़ों-टुकड़ों में कई बार तोड़-फोड़ झेलती आयी थी। भू–माफ़ियाओं ने लोगों को ज़मीनें बेच-बेच कर बहुत पैसे कमाये। बहुत से लोगों का कहना था कि वे जानते थे कि यह एक जुआ है। ज़मीन पक्की नहीं थी और वे अब मान चुके थे कि वे जुआ हार चुके हैं। लेकिन वहाँ की जनता यह समझने में असफल रही कि आवास का अधिकार जन्मसिद्ध अधिकार है। सरकारों की ज़िम्मेदारी है कि वह नागरिकों को आवास, बिजली, पानी और साफ़-सफ़ाई की सुविधा मुहैया कराये। यह समझने की जगह लोग अतिक्रमण के तर्क को मान बैठे थे। कई दशकों के दौरान धीरे-धीरे करके लोग वहाँ बसते रहे। एक-एक दीवार जोड़ने के लिए खोरी की आबादी से पुलिस और वन विभाग ने हज़ारों रुपये वसूले। बिजली-पानी के कनेक्शन दिये गये। और फिर एक झटके में इसे ग़ैर-क़ानूनी देकर उजाड़ दिया गया।

एक बेहद महत्वपूर्ण कारक जो खोरी को कभी भी पूरी तरह एकजुट नहीं होने दे रहा था वह था इसका वर्ग चरित्र। पुरानी बसी खोरी में तुलनात्मक रूप से बेहतर आर्थिक स्थिति वाले लोग थे। वह यहाँ लम्बे समय से बसे थे और स्थिति से वाक़िफ़ भी थे। इनमें कई ऐसे थे जिनके अपने छोटे-मोटे व्यापार, दुकानें या अन्य व्यवसाय हैं। आबादी के दूसरे छोर पर बेहद असुरक्षित स्थिति में जीवनयापन करने वाली आबादी थी जिनके पास कोई स्थाई काम नहीं है, रोज़ कुँआ खोदकर पानी पीने की स्थिति में जीनेवाली इस आबादी की भी संघर्ष में उदासीनता बनी हुई थी। ऐसी आबादी का मनोबल नितान्त असुरक्षा की भावना की वजह से बेहद कमज़ोर हो जाता है। ऐसी आबादी नई खोरी में ज़्यादा थी। इन दोनों आबादी को जोड़ दें तो संघर्ष से एक बड़ा हिस्सा बाहर हो जाता है। जो लोग संघर्ष कर रहे थे उनके सामने कई समस्याएँ थीं। सत्ता द्वारा फैलाया गया झूठ, आन्दोलन में हर दिन कुछ अप्रत्याशित हो जाना। तरह-तरह के मदारियों द्वारा किये जाने वाले ड्रामे। क्रान्तिकारी संगठनों की समझदारी पर भी हम ऊपर लिख चुके हैं। अगर पूरी एकजुटता के साथ लोगों में सघन प्रचार किया गया होता, बड़े पैमाने पर पर्चे निकाले गये होते, आन्दोलन के विभिन्नरूपों के ज़रिए जनता के मुद्दों पर सही समझ बनायी गयी होती तो आन्दोलन को ज़्यादा संगठित और व्यापक बनाया जा सकता था लेकिन समय की कमी और सही राजनीतिक लाइन पर एकजुट न हो पाने के कारण आन्दोलन बहुत बिखरे ढंग से ही चल पाया। सत्ता और प्रशासन में बैठे लोग भी इस बात को देख रहे थे और उन्होंने इसका पूरा फ़ायदा उठाया।

# गुजरात मॉडल मज़दूरों के लिए मौत और नंगी ग़ुलामी का मॉडल है!

– रामसलोने

*''मज़दूरों की बस्ती की धुआँरी और गन्दी हवा में हर रोज़ फैक्टरी के भोंपू का काँपता हुआ कर्कश स्वर गूँज उठता और उसके आवाहन पर छोटे-छोटे मटीले घरों के उदास लोग सहमे हुए तिलचट्टों की तरह भाग पड़ते। वे नींद पूरी करके अपने थके हुए अंगों को आराम भी नहीं दे पाते थे। ठिठुरते झुटपुटे में वे कच्ची सड़क पर फैक्टरी की ऊँची सी पत्थर की इमारत की तरफ चल पड़ते, जो बड़े निर्मम तथा निश्चिन्त भाव से उबकी प्रतीक्षा करती रहती थी और जिसकी तेल से चिकनी दर्जनों चौकोर आँखें सड़क पर प्रकाश करती थीं। उनके पैरों के नीचे कीचड़ की छप-छप होती थी। वे अलसाई हुयी आवाज़ में चिल्लाते और हवा में उनकी गन्दी गालियाँ गूँज उठतीं और दूसरी आवाज़ें - मशीनों की गड़गड़ाहट और भाप की फक-फक हवा में तैरती हुई आकर इन आवाजों में मिल जातीं। ऊँची-ऊँची काली चिमनियाँ, जो बहुत कठोर और निराशापूर्ण मालूम होती थीं बस्ती के ऊपर मोटे-मोटे मुगदरों की तरह अपना मस्तक ऊँचा किये खड़ी रहती थीं।*

*शाम को जब डूबते हुए सूरज का थका-थका प्रतिबिम्ब घरों की खिड़कियों में दिखाई देता तो फैक्टरी इन लोगों को अपने पाषाण उदार से उगल देती, मानो वे साफ़ की गयी धातु का बचा हुआ कचरा हों और वे फिर सड़क पर चल पड़ते... गन्दे चेहरों पर कालिख, भूखे, दाँत चमकते हुए और शरीर से मशीन के तेल की दुर्गंध आती हुई।''*

**1907 में प्रकाशित मक्सिम गोर्की के कालजयी उपन्यास 'माँ' की ये पंक्तियाँ ज़ारशाही रूस में पिसते हुए मज़दूर वर्ग की स्थिति को बयान करती हैं। आज भारत में ज़ारशाही नहीं है लेकिन पूँजीवाद के जुवे के तले पिसते मज़दूर वर्ग की स्थिति इससे भी बदतर है। जिस 'गुजरात मॉडल' का सपना बेचकर 2014 में मोदी सरकार सत्ता में पहुँची थी उसकी सच्चाई किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को झकझोर के रख देगी।** गुजरात के राजकोट शहर से लगभग डेढ़ सौ किलीमीटर दूर भावनगर सिटी के पास धासा वीसी नाम का एक छोटा सा क़स्बा है। इस क़स्बे में कपास से धागा बनाने वाली लगभग 15 कम्पनियाँ हैं। इन सभी कम्पनियों का ढाँचा विशालकाय है। हर फैक्टरी में केवल एक गेट है और सारी फैक्टरियाँ चारों तरफ से बिलकुल बन्द हैं। इसके बाद कारख़ाने के बाहर चारों और कँटीले तारों की घेराबन्दी की गयी है। ये कारख़ाने बिल्कुल जेल की तरह हैं।

हर कारख़ाने में 300-500 मज़दूर काम करते है। इनमें ज़्यादातर मज़दूर उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों के हैं, जिनको कारख़ानेदार दलालों की मदद से अच्छी पगार, बेहतर काम की जगह, 8 घण्टे काम और ओवरटाइम जैसी तमाम सुविधाओं का झाँसा देकर गाँव-गाँव में बस भेज-भेजकर बुलवाता है। एक बार इस झाँसे में फँसने के बाद ज़िन्दगी मौत से भी बदतर हो जाती है।

जिस फैक्टरी में मैं काम करता था, उसका नाम 'स्पिनर्स एण्ड स्पिनर्स प्राइवेट लिमिटेड' था और कारख़ाने में लगभग 300 मज़दूर काम करते थे। जिस दिन हम लोग कारख़ाने में पहुँचे उसी दिन हम लोगों को कारख़ाने के अन्दर बनी कोठरियों में 10-10, 12-12 की संख्या में ठूँस दिया गया। जब मालूम चला कि एक दिन की मज़दूरी 233 से लेकर 250 रुपये तक होगी तो अच्छी पगार का सपना छूमन्तर हो गया क्योंकि इससे बेहतर मज़दूरी हम अपने शहर कर्वी, चित्रकूट में लेबर चौराहे पर पा जाते थे। कुछ देर बाद ही मैनेजमेण्ट की तरफ से दूसरा फ़रमान आया कि मज़दूरों को अपना खाना बनाने की छूट नहीं है। सबको कारख़ाने के कैण्टीन में ही खाना होगा और इसका भुगतान कारख़ानेदार मजूरी में कटौती करके पूरा करेगा। दो वक़्त जली हुई रोटियों और दाल के लिए 1800 रुपये की कटौती की जाती थी।

कारख़ाने का औसत तापमान 40 डिग्री सेल्सियस से कुछ ऊपर ही रहता था। न कोई सुरक्षा के उपकरण थे और न किसी आपात स्थिति के लिए कोई तैयारी थी। इस भयंकर गर्मी में बिना रुके और खड़े-खड़े 12-12 घण्टे लगातार कमरतोड़ काम लिया जाता था। रुई के उड़ने और कपास की धुनाई के दौरान उड़ने वाली धूल के कारण आम तौर पर हर मजदूर भयंकर खाँसी और छींक और यहाँ तक कि बुखार से पीड़ित रहता था। फिर भी मज़दूरों को आराम का मौका नहीं दिया जाता था। अगर कोई मज़दूर थक-हार कर दो चार मिनट के लिए भी बैठ जाता तो यह सैकड़ों गालियों और मज़दूरी में कटौती के लिए काफ़ी था। कारख़ाने का मैनेजमेंट मजदूरों को जब चाहे, जहाँ चाहे और जैसे चाहे काम पर लगा देता था लेकिन मज़दूरी पन्द्रह दिनों की काट ली जाती थी ताकि इस अमानवीय शोषण से तंग आकर कोई मज़दूर भाग न सके। पाबन्दी इस क़दर थी कि बुरी तरह से बीमार मज़दूरों को भी इलाज के लिए कैम्पस से बाहर बिना अनुमति के नहीं जाने दिया जाता था।

एक बार कारख़ाने में प्रवेश के बाद 6 महीने तक किसी भी सूरत में छुट्टी नहीं मिलती है। अगर कोई व्यक्ति काम छोड़ने की बात करता है तो तुरन्त ही गालियों की बौछार शुरू हो जाती है और अब तक का सारा बकाया कारख़ानेदार की जेब में चला जाता है और ऊपर से कैंटीन के ख़र्च को भी जबरिया वसूला जाता है। अगर आप कैण्टीन का ख़र्च नहीं चुका सकते तो आपको कम से कम 6 महीने इस अमानवीय स्थिति में सड़ना होता है।

इलाक़े की सभी फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मजदूरों की यही कहानी है। इस पूरी स्थिति से तंग आकर अगर कोई मज़दूर भागने की कोशिश भी करता तो वह बेकार चला जाता क्योंकि सभी कारखानों के चारों ओर बिछाये गये कँटीले तार मज़दूरों के शारीर को छलनी कर देते है। भागने के प्रयास में कई मज़दूर कँटीले तारों से भयंकर घायल हो गये जिससे कुछ की मौत भी हो गयी है। जब मैं कारख़ाने में काम कर रहा था, उस दौरान भी एक मज़दूर ने रात में दीवार फाँदकर और कँटीले तारों को पार करके भागने की कोशिश की। नतीजा यह हुआ कि अगली सुबह पास के कस्बे में उसे पकड़ लिया गया। और फिर वापस लाकर कोठरी में क़ैद कर दिया गया। आमतौर पर होता यह है कि छः महीने बाद या उससे पहले बीच में किसी भी तरह किसी मज़दूर को बाहर जाने का मौक़ा मिलता है तो वह दुबारा इन कारखानों में आने की हिम्मत नहीं करता।

**यह है भाजपा के गुजरात मॉडल की असली सच्चाई। यह तो केवल एक छोटे से कस्बे की बात है, देशभर में ऐसे लाखों कस्बे हैं और करोड़ों हम जैसे मज़दूर इस अमानवीय स्थिति में जीने के लिए अभिशप्त हैं। इन कारखानों के मालिक मज़दूरों के खून के प्यासे है, इनका बस चले तो ये मज़दूरों के खून को भी सिक्के में ढाल कर अपनी तिजोरियों को गर्म कर लें।**

# पूँजीपतियों को रिझाने के लिए सिजदे में बिछी तेलंगाना सरकार

– पराग

हाल ही में केरल की काइटेक्स गारमेण्ट्स कम्पनी ने केरल में अपने प्रस्तावित 3500 करोड़ रुपये के निवेश को स्थगित करने और तेलंगाना के वारंगल ज़िले में 1000 करोड़ रुपये का निवेश करने का निर्णय लिया। काइटेक्स गारमेण्ट्स बच्चों के कपड़े बनाने वाली दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी कम्पनी है। जैसे ही काइटेक्स ग्रुप के अध्यक्ष और प्रबन्ध निदेशक साबू एम जैकब ने केरल को छोड़कर किसी नयी जगह निवेश करने की अपनी योजना की घोषणा की, राज्यों के बीच उन्हें अपने यहाँ निवेश करने के लिए आमंत्रित करने की होड़ लग गयी। नौ राज्यों ने फ़ौरन उनसे सम्पर्क किया। यहाँ तक कि केन्द्र सरकार के राज्य मंत्री राजीव चन्द्रशेखर तक ने जैकब को अपने गृह राज्य कर्नाटक में निवेश करने के लिए मनाने के लिए फ़ोन से सम्पर्क किया। लेकिन एक उद्योगपति को लुभाने की इस होड़ में तेलंगाना सरकार ने बाज़ी मार ली। काइटेक्स के सीएमडी साबू एम जैकब सहित शीर्ष अधिकारियों के प्रतिनिधिमण्डल को चार्टर्ड फ़्लाइट से कोच्चि से हैदराबाद लाया गया। उसके बाद तेलंगाना के उद्योग मंत्री के.टी. रामाराव (केटीआर), जो मुख्यमंत्री के. चन्द्रशेखर राव (केसीआर) के बेटे भी हैं, काइटेक्स के प्रतिनिधि मण्डल को अपने साथ वारंगल ले गये जहाँ काइटेक्स ग्रुप ने काकतिया मेगा टेक्सटाइल पार्क में दो साल के भीतर 1,000 करोड़ रुपये के निवेश की घोषणा की।

साबू जैकब ने अभिभूत होकर कहा कि तेलंगाना सरकार ने उन्हें सस्ती ज़मीन, बिजली और पानी का प्रावधान करने का आश्वासन दिया है और यह भी भरोसा दिलाया है कि तेलंगाना सरकार उनकी कम्पनी का नियमित निरीक्षण नहीं करेगी। यदि दो या तीन साल में एक बार निरीक्षण किया भी गया तो वह भी प्रमुख सचिव या सम्बन्धित मंत्री के आदेश पर होगा। कम्पनी के प्रबन्धन को निरीक्षण की जानकारी पहले ही दे दी जायेगी जिससे वे तैयार रहें और फिर भी यदि निरीक्षण के दौरान कोई ख़ामी पायी जाती है तो सरकार के स्तर पर इसे सुधारने के लिए क़दम उठाये जायेंगे और ख़ामियों को कहीं प्रकाशित नहीं किया जायेगा ताकि उद्योगपति को बदनाम न किया जा सके और व्यवसाय घाटे में न चला जाये। यहाँ यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि केरल में काइटेक्स गारमेण्ट्स के ख़िलाफ़ मुख्य आरोप यही था कि उसकी फ़ैक्टरी से प्रदूषण फैलेगा। केटीआर ने काइटेक्स ग्रुप को आश्वासन दिया है कि दूषित जल के निस्तारण की पूरी ज़िम्मेदारी राज्य सरकार की होगी और कम्पनी को इसकी चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस पूरे प्रकरण से तथाकथित दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में उद्योगपतियों के दबदबे का पता चलता है और इससे यह भी दिखता है कि तेलंगाना सरकार किस तरह पूँजीपतियों को रिझाने में सबसे आगे है।

जैकब ने केटीआर की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि उन्हें लगा कि वे किसी मंत्री से नहीं बल्कि राज्य के सीईओ से मिल रहे हैं। एक उद्योगपति द्वारा तेलंगाना के उद्योग मंत्री केटीआर की प्रशंसा कोई नयी बात नहीं है। केटीआर ने हाल के वर्षों में पूँजीतियों को रिझाने के लिए उन्हें सौग़ातों की जो झड़ी लगायी है उसकी वजह से पूँजीपति वर्ग उनपर लहालोट है। निवेशकों के सामने लाल क़ालीन बिछाने के मामले में केटीआर की छवि कमोबेश वैसी ही बनती जा रही है जो कुछ साल पहले आन्ध्र प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री और तेलुगु देशम पार्टी के नेता चन्द्रबाबू नायडू की हुआ करती थी। अख़बारों में केटीआर की शान में लम्बे–लम्बे लेख लिखे जा रहे हैं कि वे किस तरह से तेलंगाना का कायापलट कर रहे हैं। तेलंगाना की राजधानी हैदराबाद में जगह-जगह लगे होर्डिंग में मुख्यमंत्री केसीआर से भी ज़्यादा केटीआर की तस्वीरें देखने को मिलती हैं।

केटीआर के मुरीद केवल देशी पूँजीपति ही नहीं बल्कि विदेशी पूँजीपति भी हैं। इसकी वजह यह है कि केटीआर की अगुवाई में टीआरएस की सरकार ने विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए व्यापार के मुताबिक़ सरल, तेज़ और पारदर्शी क्लीयरेंस, 24 घण्टे बिजली और बेहतर क़ानून-व्यवस्था मुहैया कराने की ज़बरदस्त मार्केटिंग की है। पूँजीपतियों को संसाधनों की लूट की खुली छूट देने के लिए केटीआर राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर तेलंगाना में निवेशानुकूल माहौल प्रदान करने का वायदा करते हैं। यही वजह है कि सेल्सफ़ोर्स, ज़ेडएफ़ और गोल्डमैन सैक्स जैसी दुनिया की विशालकाय राष्ट्रपारीय कम्पनियों ने हाल ही में तेलंगाना में निवेश करने की घोषणा की है। अभी हाल ही में केटीआर ने ताइवान की कम्पनियों को तेलंगाना में निवेश करने के लिए आकर्षित करने के मक़सद से एक विशेष औद्योगिक क्लस्टर बनाने का प्रस्ताव बनाया है जिसमें ताइवान की कम्पनियों को बेरोकटोक मुनाफ़ा कमाने की खुली छूट होगी। तेलंगाना सरकार ने निवेशकों के अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए एक विशेष क़ानून भी बनाया है।

तेलंगाना सरकार पूँजीपतियों को उपहार के तौर पर 24×7 सब्सिडाइज़्ड औद्योगिक बिजली उपलब्ध कराने का अपना वायदा करते समय लोगों को यह नहीं बताती कि यह वायदा सरकार आम जनता पर विभिन्न प्रकार के कर बढ़ाकर और आम लोगों के द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली घरेलू बिजली के बिलों में बढ़ोत्तरी करके ही पूरा कर सकती है। पूँजीपतियों को दी जाने वाली रियायत इस आधार पर न्यायसंगत ठहरायी जाती है कि इससे नये रोज़गार पैदा होंगे। लेकिन टीआरएस की सरकार द्वारा पिछले सात सालों में पूँजीपतियों पर हज़ारों करोड़ रुपये की सब्सिडी न्योछावर कर देने के बावजूद नये रोज़गार पैदा होते हुए कहीं दिखायी नहीं देते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था पर नज़र रखने वाली संस्था सेण्टर फ़ॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकोनॉमी की एक रिपोर्ट के अनुसार तेलंगाना में लगभग 25% ग्रेजुएट बेरोज़गार हैं। ग्रेजुएट नागरिकों की बेरोज़गारी दर के हिसाब से देश में तेलंगाना आठवें स्थान पर है। जहाँ बेरोज़गारी दर का राष्ट्रीय औसत 21.6% है वहीं तेलंगाना में बेरोज़गारी दर 33.9% तक है जो राष्ट्रीय औसत से बहुत ज़्यादा है। आँकड़ों के अनुसार महिलाओं की शिक्षा से ड्रॉपआउट होने की दर बढ़ी है और महिलाओं की कार्यक्षेत्र में भागीदारी में कमी आयी है। राज्य सरकार की नौकरियों के नियमित पद ख़ाली पड़े हुए हैं और सरकार ठेकेदारों के ज़रिए काम करवा रही है जिससे युवाओं की बेरोज़गारी लगातार बढ़ती रही है। हाल के वर्षों में जो पूँजी निवेश तेलंगाना में हुआ है उससे केवल उच्च तकनीकी कुशलता प्राप्त छोटी सी आबादी के लिए ही रोज़गार के द्वार खुले हैं। अधिकांश आम आबादी के लिए ठेके, कैज़ुअल और दिहाड़ी पर काम करने और लेबर अड्डों पर काम की तलाश में ग्राहक का इन्तज़ार करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं दिखता है। यही वजह है कि हैदराबाद में दो शहर बसते हुए साफ़ देखे जा सकते हैं, एक में देशी-विदेशी कम्पनियों की भव्य इमारतें और आलीशान अपार्टमेण्ट व चकाचौंध भरे शॉपिंग माल नज़र आते हैं और दूसरे में नरक के समान बस्तियों में रहने वाली आम मेहनतकश आबादी!

# तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष के 75 साल
# उपलब्धियाँ और सबक़

**महान जन चित्रकार चित्तप्रसाद का वुडकट प्रिंट – तेलंगाना**

**– आनन्द सिंह**

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चले तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष (तेलुगु में 'तेलंगाना रैतुंगा सायुध पोराटम') की शानदार विरासत को भारत के हुक्मरानों द्वारा साज़िशाना ढंग से छिपा देने की वजह से देश के अन्य हिस्सों में आमजन तेलंगाना के किसानों और मेहनतकशों की इस बहादुराना बग़ावत से अनजान हैं, हालाँकि तेलंगाना में यह शौर्यगाथा लोकसंस्कृति के तमाम रूपों में जनमानस के बीच आज भी ज़िन्दा है। दोड्डी कोमरैय्या और चाकलि ऐलम्मा जैसे किसान विद्रोहियों की गिनती तेलंगाना के नायकों और नायिकाओं में होती है। इस शानदार संघर्ष पर तेलुगू में कई फ़िल्में भी बन चुकी हैं जिनमें कृष्ण चन्दर के हिन्दी उपन्यास 'जब खेत जागे' पर आधारित और गौतम घोष के निर्देशन में बनी फ़िल्म 'मा भूमि' (हमारी ज़मीन) सबसे बेहतरीन है।

तेलंगाना के किसानों के इस वीरतापूर्ण संघर्ष की शुरुआत के 75 वर्ष पूरे होने के अवसर पर उसकी शानदार विरासत, उसकी उपलब्धियों और उससे निकलने वाले सबक़ से पाठकों को परिचित कराने के मक़सद से हम 'मज़दूर बिगुल' में एक विशेष लेख प्रस्तुत कर रहे हैं जो जगह की सीमा को देखते हुए दो क़िस्तों में प्रकाशित किया जायेगा। पहली क़िस्त में हम तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष की पृष्ठभूमि, उसकी शुरुआत, निज़ाम की रियासत द्वारा उसके दमन के बावजूद उसके अग्रवर्ती विकास की चर्चा करेंगे। दूसरी क़िस्त में हम देखेंगे कि कैसे हैदराबाद रियासत के भारत में विलय के बाद भारत की बुर्जुआ राज्यसत्ता द्वारा तेलंगाना संघर्ष को फ़ौज के सहारे कुचल देने की तमाम कोशिशों के बावजूद किसानों का सशस्त्र संघर्ष 3 वर्षों तक जारी रहा और किस प्रकार भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व ने इस दौरान वाम और दक्षिणपन्थी विचलन के बीच झूलते हुए अन्तत: निहायत ही शर्मनाक ढंग से भारत की बुर्जुआ सत्ता के सम्मुख बिना शर्त आत्मसमर्पण करते हुए इस ऐतिहासिक संघर्ष को वापस ले लिया और उसके साथ ही साथ हम उस संघर्ष की उपलब्धियों, उससे निकलने वाले सबक़ और आज के दौर में उसकी प्रासंगिकता की चर्चा करेंगे। इस लेख में कई तथ्य पी. सुन्दरैय्या की किताब 'तेलंगाना पीपल्स स्ट्रगल एण्ड इट्स लेसन्स' से लिये गये हैं, हालाँकि हमारा विश्लेषण बिल्कुल अलग है।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद भारत से ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने अगर आनन-फ़ानन में वापस जाने का फ़ैसला किया तो इसकी सबसे बड़ी वजह उस समय देश की विस्फोटक परिस्थितियाँ थीं। आज़ाद हिन्द फ़ौज के अधिकारियों पर मुक़दमे के बाद पूरे देश में ज़बर्दस्त आक्रोश, नौसेना में बग़ावत, तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष, तेभागा व पुनप्रा-वायलार में किसान विद्रोह, देश के विभिन्न हिस्सों में मज़दूरों के जुझारू आन्दोलन जैसी घटनाओं ने अंग्रेज़ों को यह यक़ीन दिला दिया था कि अब भारत पर शासन करना उनके बस में नहीं है। लेकिन विडम्बना यह है कि देश की आज़ादी के ठीक पहले घटी इन ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा इतिहास की किताबों में नहीं के बराबर मिलती है। आज़ादी के बाद सत्ता में आये भारतीय बुर्जुआ वर्ग के नुमाइन्दों ने एक सोची-समझी रणनीति के तहत भारत की जनता की इन शौर्य गाथाओं को विस्मृति के अँधेरे में डाल दिया ताकि लोग हुक्मरानों की जनद्रोही हरकतों से अनजान रहें। इनमें से तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष सबसे अहम और बेमिसाल था क्योंकि यह बहादुराना संघर्ष आज़ादी मिलने के बाद भी 4 वर्षों तक जारी रहा और उसने न सिर्फ़ हैदराबाद के निज़ाम की क्रूर निरंकुश सामन्ती सत्ता का बल्कि आज़ाद भारत की बेरहम बुर्जुआ सत्ता का भी घोर जनविरोधी चरित्र सबके सामने उभार कर रख दिया था।

तेलंगाना किसान संघर्ष कई चरणों से होकर गुज़रा था। शुरुआत में जागीरदारों, देशमुखों और ज़मीन्दारों के बढ़ते ज़ुल्मों के ख़िलाफ़ किसानों की कुछ माँगों को लेकर शुरू हुआ आन्दोलन देखते ही देखते हैदराबाद के निज़ाम की निरंकुश सामन्ती सत्ता के ख़िलाफ़ एक सशस्त्र संघर्ष में तब्दील हो गया। निज़ाम की पुलिस, फ़ौज और रज़ाकार नामक इस्लामिक कट्टरपन्थी सेना द्वारा बर्बर दमन की कोशिशों के बावजूद इस सशस्त्र संघर्ष की आग बुझने की बजाय नये-नये इलाक़ों में फैलती चली गयी। सितम्बर 1948 में भारतीय सेना ने हैदराबाद को भारतीय यूनियन में मिलाने के बाद किसान विद्रोह का दमन शुरू कर दिया जिसकी वजह से संघर्ष का एक नया दौर शुरू हो गया। निज़ाम के सशस्त्र बलों को धूल चटाने वाले बहादुर कम्युनिस्ट और किसान लड़ाकों ने ताक़तवर भारतीय सेना से भी जमकर मुक़ाबला किया और अन्त तक हार नहीं मानी, भले ही उनके नेतृत्व ने शर्मनाक ढंग से आत्मसमर्पण कर दिया। इस संघर्ष के विराट स्वरूप का अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि इसके दौरान तेलंगाना के 16 हज़ार वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में 3 हज़ार गाँवों में रहने वाली क़रीब 30 लाख की आबादी ने सामन्ती भूस्वामियों को उनके महलनुमा घरों (गडी) से शहरों की ओर खदेड़कर ख़ुद को क्रान्तिकारी ग्राम राज्यों में संगठित कर लिया था। इस संघर्ष का केन्द्र तेलंगाना के नालगोण्डा, वारंगल और खम्मम ज़िलों में था, हालाँकि तेलंगाना के कई अन्य ज़िले भी इसकी चपेट में आ चुके थे। जन कमेटियों की निगरानी में क़रीब 10 लाख एकड़ की ज़मीन किसानों के बीच बाँटी गयी थी। वेट्टी (जबरिया श्रम व्यवस्था) का ख़ात्मा कर दिया गया था, खेत मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी को बढ़ा दिया गया था और न्यूनतम मज़दूरी को सख़्ती से लागू किया जाता था। इस संघर्ष के दौरान क़रीब 4 हज़ार कम्युनिस्ट और किसान विद्रोहियों ने जान गँवायी और क़रीब 10 हज़ार विद्रोहियों को 3 से 4 साल तक जेल में रहना पड़ा था।

## निज़ाम का निरंकुश सामन्ती शासन और किसानों व मेहनतकशों की बदहाली

तेलंगाना किसान सशस्त्र विद्रोह जिस क्षेत्र में हुआ वह हैदराबाद रियासत के अन्तर्गत आता था जो भारत की आज़ादी के समय मौजूद 565 रियासतों में सबसे बड़ी थी। इस रियासत की स्थापना मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य के विघटन के दौर में दक्कन क्षेत्र में मुग़लों के सूबेदार मीर क़मरुद्दीन ख़ान (आसफ़ जाह) ने 1724 में की थी। चूँकि आसफ़ जाह ने निज़ाम-उल-मुल्क की उपाधि ली थी जिसकी वजह से इस रियासत को निज़ामशाही के नाम से जाना जाता है। निज़ामों ने मराठाओं के साथ संघर्ष किया और दक्षिण भारत के बड़े हिस्से पर अपना क़ब्ज़ा जमाया तथा भारत में अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्थापित होने के बाद उनकी मातहती को स्वीकार करके अपनी निरंकुश सामन्ती सत्ता को क़ायम रखा। तेलंगाना विद्रोह के समय हैदराबाद की रियासत में तीन भाषायी क्षेत्र थे, जिनमें क़रीब 50 फ़ीसदी क्षेत्र आज के तेलंगाना में आता था जिसमें 8 तेलुगु भाषी ज़िले और हैदराबाद शहर शामिल थे, 28 फ़ीसदी क्षेत्र मराठवाड़ा में आता था जिसमें 5 मराठी भाषी ज़िले शामिल थे और 22 फ़ीसदी क्षेत्र कर्नाटक में आता था जिसमें 3 कन्नड़ भाषी ज़िले शामिल थे।

तेलंगाना संघर्ष के समय हैदराबाद की रियासत के क़रीब 5 करोड़ 30 लाख एकड़ की ज़मीन के 60 फ़ीसदी हिस्से पर राज्य सरकार की भूराजस्व व्यवस्था (दीवानी या ख़ालसा) लागू थी। इन इलाक़ों में रैयतवाड़ी व्यवस्था के तहत सरकारी अधिकारी कर वसूलते थे। इस कर वसूली में देशमुख, सरदेशमुख, देशपाण्डे, देसाई और सरदेसाई जैसी उपाधि वाले बिचौलियों की अहम भूमिका होती थी। इन बिचौलियों ने किसानों से धोखाधड़ी करके उनकी हज़ारों एकड़ ज़मीन हड़पकर अपनी सम्पत्ति बना ली थी और किसानों को काश्तकार के रूप में तब्दील कर दिया था। इस प्रकार के भूस्वामी अधिकांशत: रेड्डी और वेलमा जातियों से आते थे। इन भूस्वामियों ने कितने बड़े पैमाने पर ज़मीन पर क़ब्ज़ा किया था इसका अन्दाज़ा इसी से लग जाता है कि तेलंगाना संघर्ष से पहले जन्नारेड्डी प्रताप रेड्डी परिवार जैसे भूस्वामी हुआ करते थे जिनके पास डेढ़ लाख एकड़ तक की ज़मीन का मालिकाना हुआ करता था और उनके पास 750 एकड़ ज़मीन पर आम का बाग़ हुआ करता था।

हैदराबाद रियासत की ज़मीन के तीस फ़ीसदी हिस्से पर जागीरदारी व्यवस्था क़ायम थी। आसफ़ जाही निज़ाम अपने विश्वासपात्रों (जिनमें मुसलमान और हिन्दू दोनों शामिल थे) को फ़ौजी एवं अन्य सेवाओं के बदले जागीरों के रूप में कुछ गाँवों में

**(पेज 9 पर जारी)**

# तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष के 75 साल

(पेज 8 से आगे)

भूराजस्व वसूलने का अधिकार दिया करते थे। समय बीतने के साथ ही ये जागीरें ख़ानदानी होने लगीं। जागीरदारों को कुछ प्रकार के कर वसूलने का भी अधिकार था और वे पुलिस एवं न्यायिक कार्यों को भी अंजाम देते थे। जागीरदारों के अतिरिक्त गाँवों में कुछ पारम्परिक हिन्दू शासक भी हुआ करते थे जो निज़ाम के दौर से पहले से उन इलाक़ों की शासन व्यवस्था का हिस्सा थे। ऐसे भूस्वामियों को संस्थानम कहा जाता था और निज़ाम ने वार्षिक पेशगी के बदले उन्हें मान्यता प्रदान की थी। रियासत की ज़मीन के क़रीब दस फ़ीसदी हिस्से पर निज़ाम की निजी मिल्कियत थी जिसे सर्फ़ ख़ास कहा जाता था। इस ज़मीन से निज़ाम को हर साल तक़रीबन 2 करोड़ रुपये की सालाना आमदनी होती थी जो उसके और उसके परिवार की विलासिता में ख़र्च होता था। इसके अलावा निज़ाम को क़रीब 70 लाख रुपये की अतिरिक्त राशि रियासत के ख़ज़ाने से दी जाती थी।

हैदराबाद की रियासत में ख़ास तौर पर जागीरदारी और ख़ालसा के इलाक़ों में किसानों का ज़बर्दस्त शोषण और उत्पीड़न होता था। किसानों को उन्हीं की ज़मीन से बेदख़ल करके उन्हें काश्तकार बनाना आम बात थी। ख़ासतौर पर तेलंगाना के इलाक़े में भूस्वामियों का आतंक अपने चरम पर था। इसी इलाक़े में कुख्यात वेट्टी प्रथा प्रचलित थी जिसके तहत सभी जातियों और पेशों के लोगों को भूस्वामियों के यहाँ मुफ़्त सेवाएँ देनी पड़ती थी। हर दलित मज़दूर परिवार से कम से कम एक व्यक्ति को वेट्टी के लिए भेजना होता था। चमड़े का काम करने वाले मादिगा जाति के लोगों को जूते और बैग जैसे चमड़े के सामान भूस्वामियों को मुफ़्त में देने होते थे। इसी प्रकार बढ़ई, लोहार, नाई, धोबी, ताड़ी निकालने जैसे पेशों में लगे लोगों को भूस्वामियों को मुफ़्त में सेवाएँ देनी पड़ती थीं। जब राजस्व, पुलिस, वन, एक्साइज़ व अन्य विभागों से अधिकारी गाँव का दौरा करते थे तो ग्रामवासियों को उनको भी मुफ़्त में सेवाएँ देनी पड़ती थीं। इसी प्रकार वारंगल और नालगोण्डा इलाक़ों में आदिवासी भगेला प्रथा के तहत भूस्वामियों के यहाँ क़र्ज़ के बदले पीढ़ी-दर-पीढ़ी विभिन्न प्रकार की सेवाएँ देनी पड़ती थीं। सबसे बुरी स्थिति महिलाओं की थी। तमाम लड़कियों को भूस्वामियों के घर पर दासी के रूप में रहना पड़ता था। जो महिलाएँ भूस्वामियों के खेतों में काम करती थीं उन्हें पूरी तरह से भूस्वामियों के रहमोकरम पर रहना होता था। खेत में काम करते समय वे अपने बच्चों को दूध तक नहीं पिला सकती थीं। भूस्वामियों को महिलाओं का यौन शोषण करने का पूरा अधिकार प्राप्त था।

हालाँकि हैदराबाद की रियासत में केवल 12 फ़ीसदी लोग ही उर्दूभाषी थे जो हैदराबाद शहर में रहते थे और शेष 88 फ़ीसदी लोग तेलुगु, मराठी और कन्नड़ बोलने वाले लोग थे, लेकिन स्कूलों में पढ़ाई का माध्यम केवल उर्दू होता था जिसकी वजह से ग़ैर उर्दूभाषी अधिकांश आबादी को शिक्षा के कोई अवसर उपलब्ध नहीं थे। महिलाएँ तो शिक्षा के बारे में सोच भी नहीं सकती थीं। इसी वजह से साक्षरता की दर मात्र 6 फ़ीसदी थी। शासन-प्रशासन का काम भी केवल उर्दू में हुआ करता था। पहले विश्वयुद्ध के समय हैदराबाद में तेलुगु, मराठी और कन्नड़ भाषाओं में एक भी अख़बार नहीं हुआ करता था। इस प्रकार हैदराबाद रियासत की बहुसंख्यक आबादी को न सिर्फ़ आर्थिक रूप से शोषण और उत्पीड़न झेलना पड़ता था बल्कि भाषायी और सांस्कृतिक भेदभाव व उत्पीड़न का भी सामना करना पड़ता था।

इसके अलावा तेलंगाना के क्षेत्र में उस समय क़रीब 500 कारख़ाने भी हुआ करते थे जिनमें लगभग 28 हज़ार मज़दूर काम किया करते थे। ये कारख़ाने टेक्सटाइल्स, खनन, काग़ज़, इंजीनियरिंग जैसे क्षेत्रों में थे और उनके मालिकों को निज़ाम की सत्ता भारी पैमाने पर सब्सिडी और बेहद सस्ती दर पर क़र्ज़ देती थी। मज़दूरों को अधिकतम 15 रुपये प्रति माह मज़दूरी मिलती थी। सरकारी विभागों में क़रीब दो लाख मुस्लिम काम करते थे क्योंकि निज़ाम 'अन्नल मुल्की' (मुस्लिम शासक हैं) के तहत प्रशासन के कामों में मुस्लिमों को वरीयता देता था। हालाँकि इन कर्मचारियों की तनख़्वाह भी अधिकतम 30 रुपये प्रतिमाह हुआ करती थी। बड़ी संख्या में मुस्लिम आबादी क़ालीन बनाने, कपड़े पर छपाई, हैण्डलूम आदि जैसे काम करके बड़ी मुश्किल से अपना गुज़ारा करती थी। ग़ौर करने वाली बात यह है कि निज़ाम के ख़िलाफ़ बग़ावत में बड़ी संख्या में मुस्लिम मज़दूरों, किसानों, मेहनतकशों और मध्यवर्ग के प्रगतिशील मुस्लिमों ने भी हिस्सा लिया था।

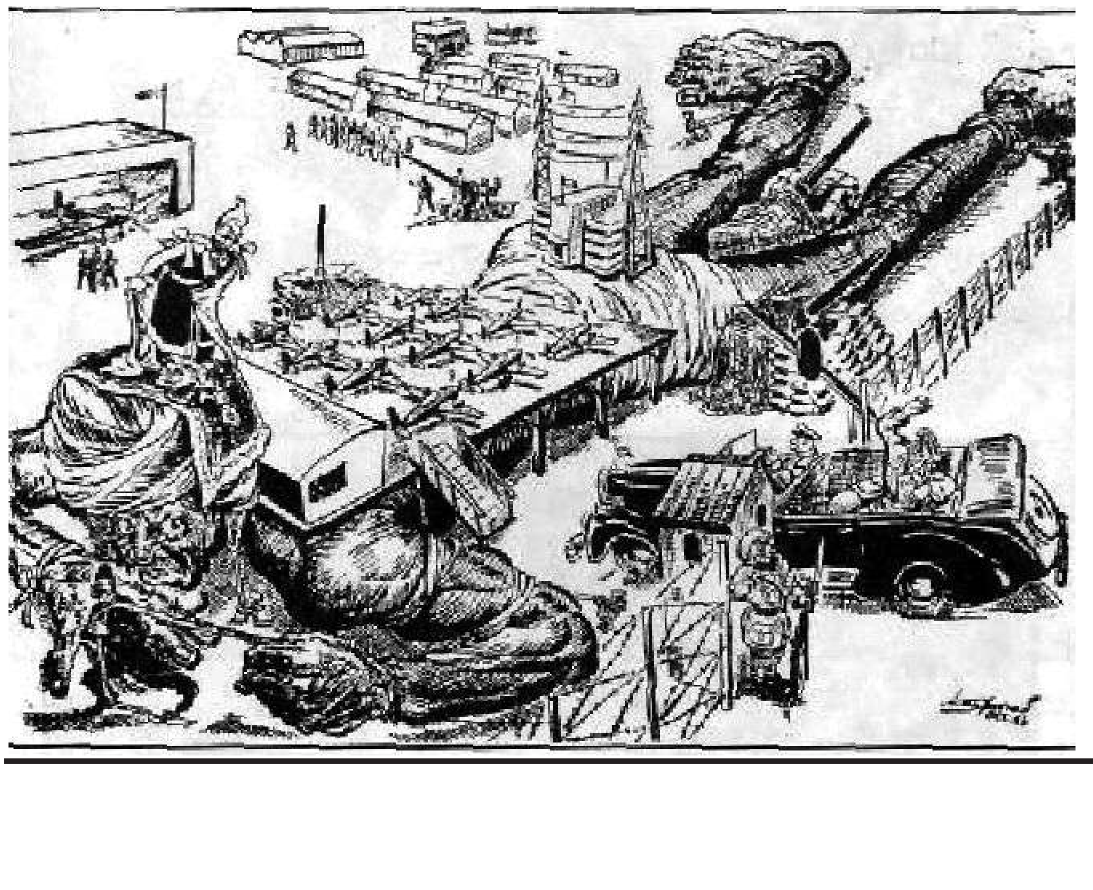

### तेलंगाना में आन्ध्र महासभा का उभार

ग़ौरतलब है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस पार्टी ने अपना समझौतावादी रुख़ दिखाते हुए हैदराबाद जैसी रियासतों के राजे-रजवाड़ों के ख़िलाफ़ वहाँ की आबादी को एकजुट, लामबन्द और संगठनबद्ध करने में लम्बे समय तक कोई पहल नहीं की। हैदराबाद में निज़ाम की निरंकुश सत्ता से कुछ नागरिक अधिकारों व प्रशासनिक सुधारों की माँग के साथ 1928 में तेलंगाना के इलाक़े में श्री माडपाटि हनुमन्त राव के नेतृत्व में कुछ बुद्धिजीवियों ने आन्ध्र महासभा नामक संगठन की स्थापना की। इसी तर्ज़ पर मराठी भाषी क्षेत्रों में महाराष्ट्र परिषद और कन्नड़ भाषी क्षेत्रों में कन्नड़ परिषद की भी स्थापना की गयी।

हालाँकि आन्ध्र महासभा की शुरुआत महज़ प्रस्ताव पास करने वाले और आवेदन करने वाले एक सुधारवादी संगठन के रूप में हुई, परन्तु तेलंगाना में निज़ाम की निरंकुश सामन्ती सत्ता और भूस्वामियों द्वारा किसानों, मज़दूरों और मेहनतकशों के बढ़ते शोषण और उत्पीड़न के साथ ही यह संगठन जल्द ही लोगों की जनवादी आकांक्षाओं की नुमाइन्दगी करने वाले एक जुझारू जनसंगठन में तब्दील होता गया। 1940 तक आते-आते श्री रवि नारायण रेड्डी, बद्दम येल्ला रेड्डी और डी. वेंकटेश्वर राव जैसे इस संगठन के कई जुझारू नेता भारत की कम्युनिस्ट पार्टी में भी शामिल हो गये और हैदराबाद रियासत में पार्टी की नियमित इकाई काम करने लगी जिसके बाद से इसका चरित्र और अधिक जुझारू व निज़ाम-विरोधी होता चला गया। 1944 के भोंगीर सम्मेलन में आन्ध्र महासभा में फूट हो गयी जिसके बाद संगठन का ग़ैर-कम्युनिस्ट नरमपन्थी धड़ा अलग हो गया और कुछ समय बाद वह राज्य कांग्रेस में शामिल हो गया। इस प्रकार आन्ध्र महासभा में कम्युनिस्टों का पूर्ण वर्चस्व स्थापित हो गया। आन्ध्र महासभा में कम्युनिस्टों की मौजूदगी की वजह से यह संगठन गाँव-गाँव तक फैल गया और वेट्टी के ख़ात्मे, काश्तकारों की बेदख़ली ख़त्म करने, जोती जा रही ज़मीन पर पट्टे के अधिकार, जागीरदारी के ख़ात्मे, करों व लगान में भारी कटौती, खेतों का अनिवार्य सर्वेक्षण जैसी जुझारू माँगें उठाने लगा।

दूसरे विश्वयुद्ध में 1941 में सोवियत संघ के शामिल होने के बाद भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने एक ग़लत लाइन अपनाते हुए ब्रिटिश-विरोधी जन कार्रवाइयों को स्थगित करने का फ़ैसला किया जिसकी वजह से वह राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के इस महत्वपूर्ण दौर में देश के कई हिस्सों में आम जन से अलग-थलग पड़ने लगी। ग़ौरतलब है कि पार्टी ने 'अंग्रेज़ों भारत छोड़ो' जैसे जुझारू जनान्दोलन में भी भागीदारी नहीं की थी क्योंकि उसका यह मानना था कि उस समय आन्दोलन छेड़ने से सोवियत संघ का गठबन्धन कमज़ोर पड़ जायेगा और फ़ासिस्टों को बढ़त मिलेगी। देश के स्तर पर कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा इस ग़लत लाइन के बाद पार्टी कीनिष्क्रियता के बावजूद तेलंगाना में पार्टी और आन्ध्र महासभा के कार्यकर्ता इस दौर में भी किसानों के बीच लगातार सक्रिय रहे और वेट्टी के ख़ात्मे, अवैध वसूली, करों में कटौती, बेदख़ली जैसे मुद्दे उठाते रहे और कई जगहों पर वह किसानों को उनका हक़ दिलाने में सफल भी रहे जिसकी वजह से लोगों के बीच उनकी लोकप्रियता बरक़रार थी। गाँवों में लोग आन्ध्र महासभा की इकाई को प्यार से संघम कहते थे।

### जुझारू संघर्ष की शुरुआत

1945 में आन्ध्र महासभा के खम्मम सम्मेलन में निज़ाम की निरंकुश सामन्ती सत्ता और जागीरदारी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का आह्वान किया गया। आने वाले दिनों के जुझारू संघर्ष की तैयारी के लिए गाँव-गाँव में संघम के कार्यकर्ता वालण्टियर दस्ते बनाकर लोगों को लाठी व गुलेल चलाने का प्रशिक्षण देने लगे। उसी साल नालगोण्डा ज़िले के जनगाँव तालुका (जो आज वारंगल ज़िले में आता है) के पालाकुर्ती नामक गाँव में एक

(पेज 10 पर जारी)

# तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष के 75 साल

(पेज 9 से आगे)

घटना घटी जिसने समूचे तेलंगाना के किसानों में नयी ऊर्जा का संचार किया। कुख्यात देशमुख विस्नूर रामचन्द्र रेड्डी ने पालाकुर्ती गाँव में रहने वाली राजका (धोबी) जाति की एक महिला चाकलि ऐलम्मा, जो संघम की सदस्य थी, की चार एकड़ की ज़मीन हड़पने के मक़सद से अपने गुण्डों को रात में ऐलम्मा के खेत से फ़सल काट लाने को भेजा। लेकिन ऐलम्मा ने संघम की मदद से गुण्डों से निपटने की पहले से ही पूरी तैयारी कर रखी थी। संघम के सदस्यों की लाठियाँ देखते ही देशमुख के गुण्डे नौ दो ग्यारह हो गये। उसके बाद संघम के सदस्यों ने खेत से फ़सल काटकर ऐलम्मा के घर पहुँचा दी। यह तेलंगाना के किसानों की बहुत बड़ी जीत थी जिसने तेलंगाना किसान संघर्ष में बहुत बड़ी भूमिका निभायी। इसके बाद से संघम को गुट्टपाला (लाठी) संघम के नाम से पुकारा जाने लगा क्योंकि अब संघम के सदस्य भूस्वामियों के गुण्डों का मुक़ाबला लाठी, गुलेल और पत्थर से करने लगे थे। गाँव-गाँव तक फैले इन संघमों में ऐलम्मा जैसी महिलाएँ बड़ी संख्या में हिस्सा लेने लगीं और पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर वे अन्त तक लड़ीं। पहले उनके हथियार मूसल और मिर्च हुआ करते थे, लेकिन जैसे-जैसे संघर्ष सशस्त्र रूप धारण करने लगा उन्होंने बन्दूक़ चलाना भी सीखा और पहले निज़ाम की फ़ौज से और बाद में भारतीय सेना से भी लोहा लिया।

### सशस्त्र विद्रोह की चिंगारी

वैसे तो 1940 के दशक की शुरुआत से ही तेलंगाना के किसानों ने आन्ध्र महासभा के नेतृत्व में सामन्ती भूस्वामियों के ख़िलाफ़ संघर्ष शुरू कर दिया था, परन्तु जिस घटना को तेलंगाना किसान सशस्त्र संघर्ष की चिंगारी माना जाता है वह 4 जुलाई 1946 को जनगाँव तालुका के ही एक अन्य गाँव कडावेण्डी में घटती है। चाकलि ऐलम्मा की ज़मीन न हड़प पाने से बौखलाए विस्नूर रामचन्द्र रेड्डी ने उस घटना के बाद अपने नियंत्रण वाले तमाम गाँवों में संघम के कार्यकर्ताओं को गुण्डों से पिटवाया और उसने पुलिस की मदद

से उनपर फ़र्जी मुक़दमों में फँसाने की चाल चली। उस दिन कडावेण्डी गाँव में संघम के कार्यकर्ताओं के घर पर गुण्डों ने हमला किया जिसके विरोध में गाँव के लोगों ने संघम के नेतृत्व में लाठियाँ, गुलेल लेकर एक जुझारू जुलूस निकाला। जब यह जुलूस रेड्डी के महलनुमा घर (गडी) के पास पहुँचा तो उसके गडी के पास छिपे गुण्डों ने लोगों पर गोलीबारी करनी शुरू कर दी। इस गोलीबारी में गाँव की संघम का नेता दोड्डी कोमरैय्या मारा गया और कई लोग ज़ख़्मी हो गये। लेकिन इसके बावजूद ग्रामवासी डटे रहे। आसपास के गाँवों से भी लोग सैकड़ों की संख्या में इकट्ठा हो गये। लोग इतने ग़ुस्से में थे कि उन्होंने गडी में आग लगा दी। यह ख़बर सुनकर देशमुख के बेटे बाबूराव ने भयानक हथियारों से लैस गुण्डों की फ़ौज के ज़रिए गाँव वालों पर हमला करने की योजना बनायी। लेकिन गाँव वालों के आक्रोश को देखकर गुण्डे रफ़ूचक्कर हो गये। इसके बाद गाँव में पुलिस आ गयी और उसने संघम के कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया, लेकिन गुण्डों पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी।

दोड्डी कोमरैय्या की शहादत के बाद किसान विद्रोह जंगल की आग की तरह तेलंगाना के अन्य हिस्सों, ख़ासकर नालगोण्डा, वारंगल और खम्मम ज़िलों तक फैलने लगा। लोग बैठकों और जुलूसों में कोमरैय्या की बहादुरी और शहादत के गीत गाने लगे, 'अमरजीवी दोड्डी कोमरैय्या ज़िन्दाबाद' के नारे लगाने लगे और भूस्वामियों के गडी के सामने जुलूस निकालकर लाल झण्डा गाड़ने लगे तथा वेट्टी, अवैध वसूली तथा बेदख़ली के ख़ात्मे की माँग करने लगे। इन जुलूसों में चाकलि ऐलम्मा के बहादुराना संघर्ष के गीत भी गाये जाते थे और उनमें बड़ी संख्या में महिलाएँ भी हिस्सा लेती थीं। इस तूफ़ानी जनान्दोलन का असर यह हुआ कि इसके प्रभाव क्षेत्र में आने वाले 300-400 गाँवों में वेट्टी प्रथा का ख़ात्मा हो गया और भूस्वामी या तो दुम दबाकर शहरों की ओर भाग खड़े हुए या फिर गाँव में भीगी बिल्ली बनकर रहने लगे। सरकार के अधिकारी इन गाँवों से कर वसूली करने की हिम्मत नहीं कर पाते थे।

### विद्रोह को कुचलने की तमाम कोशिशों के बावजूद संघर्ष फैलता चला गया

तेलंगाना किसान विद्रोह की फैलती आग से घबराकर निज़ाम ने इस आन्दोलन को बलपूर्वक कुचलने की ठानी और विद्रोह से प्रभावित गाँवों में सशस्त्र बलों की टुकड़ियाँ जाने लगीं। जब ये टुकड़ियाँ गाँवों में जातीं तो किसानों और मज़दूरों का नेतृत्व छिप जाता और टुकड़ियों के वापस लौटते ही वह फिर गाँवों में आ जाता। यहाँ तक कि लोग अदालत के आदेश को भी मानने से इन्कार करने लगे। इसके बाद निज़ाम की फ़ौज गाँवों में ही कैम्प लगाकर रहने लगी और दिन-रात विद्रोही नेताओं की खोजबीन करने लगी। इससे बचने के लिए पुरुष गाँव से दूर खेतों में रात बिताने लगे और फ़ौजियों से बचने के लिए महिलाएँ एकसाथ समूह में सोने लगीं।

निज़ाम की सत्ता द्वारा तेलंगाना के किसानों और मज़दूरों के विद्रोहों का बलपूर्वक दमन करने की तमाम कोशिशों के बावजूद विद्रोह लगातार नये इलाक़ों में फैलता गया। इसी बीच 15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद हुआ और तमाम राजे-रजवाड़ों को यह विकल्प दिया गया कि वे या तो भारत में शामिल हों या पाकिस्तान में शामिल हों या फिर स्वतंत्र रहने का फ़ैसला करें। हैदराबाद के निज़ाम ने स्वतंत्र रहने का फ़ैसला किया और आज़ाद हैदराबाद बनाने का ऐलान किया। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस पार्टी निज़ाम पर भारत में शामिल होने का दबाव डालने के लिए सत्याग्रह शुरू करने के लिए मजबूर हुई। इस नयी परिस्थिति का लाभ उठाते हुए कम्युनिस्ट पार्टी और आन्ध्र महासभा के लोग भी निज़ाम-विरोधी आन्दोलन में शामिल होकर उसका आधार विस्तारित करने लगे। निज़ाम ने इस आन्दोलन को कुचलने के लिए अपनी फ़ौज के अतिरिक्त अपने पालतू इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठन मजलिस-ए-इत्तेहाद-उल-मुस्लीमान (जो आज़ादी के बाद अपना रूप बदलकर आज भी ऑल इण्डिया मजलिस-ए-इत्तेहाद-उल-मुस्लीमान के नाम से तेलंगाना व कुछ अन्य राज्यों में सक्रिय है) की सेना का इस्तेमाल करने की योजना बनायी। क़ासिम रज़्वी के नेतृत्व में रज़ाकारों की इस निजी सेना ने निज़ाम की फ़ौज के साथ मिलकर तेलंगाना के गाँवों में आतंक का राज क़ायम कर दिया। रज़ाकारों ने बड़े पैमाने पर लूटपाट, हत्या, बलात्कार और यंत्रणा का सहारा लिया। उनके आतंक के ख़ौफ़ से कांग्रेस सहित तमाम बुर्जुआ संगठनों के लोगों और धनिक आबादी को हैदराबाद की रियासत से बाहर अन्य प्रान्तों में पनाह लेनी पड़ी। तेलंगाना में रज़ाकारों का सामना केवल कम्युनिस्ट और आन्ध्र महासभा के लोग कर रहे थे। कम्युनिस्ट पार्टी ने निज़ाम की सामन्ती सत्ता के ख़िलाफ़ फ़ैसलाकुन विद्रोह का ऐलान किया और गाँवों में लोगों से किसी भी प्रकार के ज़बरिया श्रम और अवैध वसूली से इन्कार करने का आह्वान किया। इसके अलावा सरकार और बड़े भूस्वामियों की फ़ाज़िल ज़मीन और अनाज के भण्डारों पर क़ब्ज़ा करके गाँव के ग़रीबों में बाँट दिया गया। इस बीच भारत की बुर्जुआ राज्यसत्ता ने निज़ाम के साथ स्टैण्ड-स्टिल समझौता कर लिया और किसान विद्रोह को कुचलने के लिए निज़ाम की सेना को हथियारों की आपूर्ति करने लगी। निज़ाम की सेना और रज़ाकारों से निपटने के लिए गाँवों में गुरिल्ला दस्ते (दलम) बनाये गये जिनमें दो हज़ार से दस हज़ार तक लोग शामिल हुए और जिनको राइफ़ल, रिवॉल्वर आदि चलाने का बाक़ायदा प्रशिक्षण दिया जाता था। इनकी मदद से क़रीब तीन हज़ार गाँवों में ग्राम राज्य कमेटियों की स्थापना की गयी जो भूमि वितरण, शिक्षा, स्वास्थ्य व अन्य ग्रामीण सेवाओं की निगरानी करती थी। इन ग्राम राज्य कमेटियों के ज़रिए तेलंगाना के 3 हज़ार गाँवों में क़रीब दस लाख एकड़ की ज़मीन और खेतीबाड़ी के उपकरण तथा मवेशी ग़रीबों में बाँटे गये। खेत मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ायी गयी। इस पूरे संघर्ष के दौरान जात-पात के बन्धनों को भी तोड़ने की पहल की गयी और छुआछूत जैसी प्रथाओं पर लगाम लगी। ग्राम राज्य कमेटियों में महिलाओं की भी पूरी भागीदारी होती थी। ये कमेटियाँ लोगों के पारिवारिक व विवाह तथा तलाक़ सम्बन्धी विवादों का निपटारा भी करती थीं।

13 सितम्बर 1948 को भारतीय सेना ने ऑपरेशन पोलो के तहत हैदराबाद में घुसकर पाँच दिनों के भीतर निज़ाम को हैदराबाद का भारत में विलय करने पर मजबूर कर दिया। भारत की बुर्जुआ राज्यसत्ता ने निज़ाम को उसके विशेषाधिकारों व प्रिवी पर्स को सुरक्षित रखने का पूरा आश्वासन दिया। भारत के संविधान में निज़ाम को राज प्रमुख का दर्जा तक दिया गया। निज़ाम के किसी भी अधिकारी को कोई सज़ा नहीं दी गयी। रज़ाकारों के मुखिया क़ासिम रिज़वी तक को भी उतनी सख़्त सज़ा नहीं दी गयी जिसका वह हक़दार था। हैदराबाद के भारत में विलय के दो सप्ताह के भीतर ही भारतीय सेना अपने असली उद्देश्य यानी तेलंगाना में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में जारी किसान विद्रोह को कुचलने में जुट गयी।

**इसके बाद के घटनाक्रम पर हम अगले अंक में चर्चा करेंगे।**

# मज़दूर बस्तियों में बीमारी का बोलबाला और निजी अस्पतालों की बेतहाशा लूट

(पेज 11 से आगे)

महँगा इलाज मुहैया कराने की दुकानें हैं। इसके चलते भारत का पहले से ही जर्जर प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा ढाँचा बिल्कुल ही बैठ चुका है।

जबसे फ़ासीवादी मोदी सरकार सत्ता में आई है, तबसे निजी अस्पतालों की दिन-दूनी-रात-चौगुनी तरक़्क़ी हो रही है। कहने के लिए मोदी ने जन औषधि स्कीम से लेकर जन आरोग्य योजना और आयुष्मान भारत जैसे जुमले फेंके ताकि लोगों में भ्रम बना रहे और सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं से पल्ला झाड़कर निजीकरण को बढ़ावा दिया जा सके, जिससे निजी बीमा कम्पनियों को भी मुनाफ़ा हो। इन फ़ासिस्टों को जनता की कितनी चिन्ता है, यह तो कोरोना काल मे जग-जाहिर हो गया। इन फ़ासिस्टों की ही वजह से गंगा में लाशों के ढेर पड़े थे, हर तरफ़ इंसान राख में तब्दील हो रहे थे। ऊपर से इनके साथ राज्य सरकारों ने भी मिलकर देश को श्मशान बनाने में कोई कसर नही छोड़ी।

स्वास्थ्य का अधिकार हमारा बुनियादी अधिकार है। पर इस मुनाफ़ा केन्द्रित व्यवस्था ने हर मानवीय सेवा को बाज़ार के हवाले कर दिया है। जानबूझकर जर्जर और ख़स्ताहाल की गयी स्वास्थ्य सेवा को बेहतर करने के नाम पर सभी पूँजीवादी चुनावी पार्टियाँ स्वास्थ्य का निजीकरण व बाज़ारीकरण करने पर आमादा हैं। इसका विकल्प सिर्फ़ एक ऐसी मानव केन्द्रित व्यवस्था ही हो सकती है जो मुनाफ़े पर नहीं बल्कि मानवीय ज़रूरतों पर आधारित हो। इसका विकल्प है सर्वहारा क्रान्ति। इतिहास में जिन देशों में सर्वहारा क्रान्तियाँ हुई उन देशों में सबको नि:शुल्क और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा मुहैया करायी गयी थी। अगर चीन के क्रान्तिकारी दौर की बात करें तो 1950 से 1965 तक चीन के 60 करोड़ लोगों के स्वास्थ्य और राज्य की स्वास्थ्य सेवाओं में बहुत बड़े बदलाव लाये गये जो अपनी गति और पहुँच में इतिहास में अद्वितीय थे। हैजा, प्लेग, चेचक और पोषण से सम्बन्धित ज़्यादातर बीमारियाँ लगभग ख़त्म हो गईं। एक समाजवादी समाज में ही हमें बेहतर स्वास्थ्य व्यवस्था मिल सकती है।

इसीलिए हमें आज से ही एक समान सार्वभौमिक और नि:शुल्क स्वास्थ्य व्यवस्था के लिए एकजुट होना होगा और अपनी माँगों को उठाना होगा:

1. स्वास्थ्य के अधिकार को मूलभूत अधिकार घोषित करो!

2. सभी निजी अस्पतालों, नर्सिंग होमों, पैथोलॉजी लैबों, दवा कम्पनियों, कोरोना वैक्सीन फ़ैक्टरियों और चिकित्सा-सामग्री निर्माण उद्योगों का राष्ट्रीकरण करो! कोरोना वैक्सीन को पेटेण्ट से मुक्त करो!

3. आबादी के अनुपात में व्यापक पैमाने पर डॉक्टरों व स्वास्थ्यकर्मियों की तत्काल पक्की भर्ती करो!

# पेगासस : जनान्दोलनों के दुर्ग में सेंधमारी के लिए पूँजीवादी सत्ताओं का नया हथियार

**– लता**

*दुनिया के सभी आततायी और बर्बर शासक लूट की अँधेरगर्दी और आतंक-राज का अँधेरा गहराते जाने के साथ ही दिन-रात इस भय से आक्रान्त रहते हैं कि एक दिन जनता अन्ततः संगठित होकर उठ खड़ी होगी और फिर उनका अन्तिम क्रिया-कर्म करके ही दम लेगी। फ़ासिस्ट हरदम भयाक्रान्त रहते हैं और उनका भय जितना बढ़ता जाता है उतना ही अधिक उनका अत्याचार बढ़ता जाता है। सभी फ़ासिस्ट इस मनोरोगी हद तक अकेले, शक्की और डरे हुए होते जाते हैं कि अपने आसपास वालों पर भी भरोसा नहीं करते। सभी फ़ासिस्ट अपने प्रचार-तंत्र और सैन्य तंत्र के अतिरिक्त अपने ख़ुफ़िया तंत्र को भी अभेद्य बलशाली बना देना चाहते हैं। मोदी की सत्ता भी वही सबकुछ कर रही है! पेगासस भण्डाफोड़ पानी पर तैरते आइसबर्ग का ऊपर दीखने वाला टिप मात्र है!*

*– कविता कृष्णपल्लवी की फेसबुक वॉल से*

मोदी सरकार भी अपनी सुरक्षा और अपने आसपास से लेकर जनता को संगठित करने वाले सभी के बारे में सब कुछ जान लेना चाहती है। इसलिए पेगासस पर पानी की तरह पैसा बहा कर मोदी सरकार जनाक्रोश के आने वाले सैलाब पर नियंत्रण करना चाहती है ताकि उसकी सुरक्षा दुरुस्त हो जाये और डरी-डरी बेचैन नींद उड़ी रातों से थोड़ी राहत मिले। यहाँ के भारी भरकम ख़र्चीले ख़ुफ़िया तंत्र और गली-गली में बैठे इनके भक्त निश्चित ही पर्याप्त नहीं थे इसलिए अपने सबसे पक्के यार से मदद माँगी गई। बुर्जुआ विश्व में मदद की भी क़ीमत होती है, सो इज़रायल की कम्पनी एनएसओ को स्पाईवेयर पेगासस के लिए मोदी सरकार ने जमकर पैसे दिये हैं। प्रति व्यक्ति जासूसी के सात लाख और साफ्टवेयर इन्स्टॉल करने का लिए 3.7 करोड़ रुपये की लागत पर यह स्पाइवेयर लम्बे समय से देश में काम कर रहा है। वैसे तो पेगासस का इतिहास बहुत काला होगा लेकिन इसका पहला खुलासा साल 2017 में हुआ था जब मेक्सिको के एक जनपक्षधर पत्रकार की हत्या में पेगासस के प्रत्यक्ष लिप्त होने की बात सामने आयी थी।

भारत के सन्दर्भ में 2019 में एक सूची जारी हुई थी जिसमें भारत के कई राजनीतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों और पत्रकारों के नाम शामिल थे। बीच-बीच में इसपर विवाद उठते रहे हैं लेकिन पिछले महीने दुनिया के 17 न्यूज़ एजेंसियों ने मिलकर 'प्रोजेक्ट पेगासस' नाम से एक मीडिया अभियान की शुरुआत की है। इस अभियान में पेगासस स्पाईवेयर के काम करने के तरीक़े, इस पर हुए ख़र्च आदि की जानकारी दी है साथ ही इस स्पाईवेयर को खरीदने वाले देशों की सूची जारी की है। इन्होंने एक और सूची भी जारी की है जिसमें उन लोगों का नाम है जिन पर इस स्पाईवेयर से जासूसी कराई गई है। पेगासस को अबतक का सबसे उन्नत व सबसे ख़तरनाक जासूसी उपकरण माना जा रहा है। इसे इज़रायल की एनएसओ ग्रुप कम्पनी बनाती है। यह कम्पनी इज़रायली ख़ुफ़िया विभाग की सीधी देखरेख में काम करती है। एनएसओ का दावा है कि वह पेगासस मात्र सरकारों को बेचती है न कि निजी संस्थाओं या व्यक्तियों को। 'प्रोजेक्ट पेगासस' के राज़फ़ाश के अनुसार भारत को मिलाकर क़रीब 50 देश पेगासस के ग्राहक हैं। यदि इन देशों पर एक नज़र डालें तो इनमें से ज़्यादातर देशों के निरंकुश शासक हैं, जैसे बहरीन, यूएई, सउदी अरब आदि। इन देशों के तानाशाह इसका इस्तेमाल अपने ही देश के विपक्षी नेता, राजनितिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं, जनपक्षधर पत्रकारों, वकीलों, बुद्धिजीवियों आदि पर कर रहे हैं जिसका मक़सद है जनता के प्रतिरोध का दमन। पेगासस एक ऐसा जासूसी सॉफ्टवेयर है जो किसी के मोबाइल फ़ोन में घुसकर फ़ोन को पूरी तरह से अपने क़ाबू में कर लेता है, फ़ोन में रखी तस्वीरें, वीडियो, मेसेज आदि निकाल लेता है, फ़ोन पर हो रही सारी बातचीत रिकॉर्ड कर लेता है। यहाँ तक कि फ़ोन बन्द होने पर भी कैमरा और माइक चालू रख आसपास की सभी बातों को रिकॉर्ड कर लेता है। पेगासस की जासूसी की क्षमता इस क़दर उन्नत है कि स्वयं इज़रायल भी इसे एक घातक हथियार बताता है। इसलिए बिना सरकारी अनुमति के इसे बेचने की इजाज़त मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी को नहीं देता है। 'फ़ॉरबिडेन स्टोरीज़' फ्रांस के जनपक्षधर पत्रकारों का एक समूह है। इसे एक सूची मिली है जिसमें दुनिया के 50 हज़ार से ज़्यादा फ़ोन नम्बर हैं। पेगासस इन नम्बरों को या तो अपनी घुसपैठ का शिकार बना चुका है या बनाने वाला है। इनमें 150 से ज़्यादा नम्बर भारत के हैं।

भारत में जारी नम्बरों की सूची में सबसे ज़्यादा संख्या यहाँ के राजनीतिक कार्यकर्ताओं की है और उसके बाद पत्रकार आते हैं। मज़े की बात यह है कि इनमें स्वयं मोदी सरकार के कई मंत्री और भाजपा के नेता भी शामिल हैं। तानाशाह न केवल जनाक्रोश से डरता है वह जानता है कि उसके अपने लोग भी उसी की मानसिकता के हैं सो अपनी गद्दी पर उसे हमेशा तलवार लटकती नज़र आती है। भीमा कोरेगाँव केस के राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर लम्बे समय से जासूसी जारी है। इसके अलावा न जाने देश के कितने राजनीतिक कार्यकर्ता लम्बे समय से इस या अन्य स्पाईवेयर के शिकार होंगे।

पूँजीपतियों के तलवे चाटने के अलावा यह सरकार उनके लिए एक और काम बेहद मुस्तैदी से कर रही है वह है इनके लिए डेटा एकत्र करना। भाजपा सरकार ही वह पहली सरकार थी जिसने आधार कार्ड से सभी डेटा जोड़ने को अनिवार्य बनाया था। यानी आधार कार्ड से फोन नम्बर, बैंक अकाउण्ट, राशन कार्ड, बीमा, बिजली आदि सभी कुछ जोड़ना अनिवार्य किया था। काफ़ी प्रतिरोध होने के बाद इसमें ढील दी गई। लेकिन धीरे-धीरे आज सभी कुछ आधार से जुड़ ही गया है। सरकार इस डेटा को जासूसी के लिए इस्तेमाल तो करती ही है साथ ही यह कम्पनियों को भी देती है जो अपने फ़ायदे अनुसार डेटा का उपयोग करते हैं। बड़े स्तर पर डेटा निकालना और डेटा के साथ छेड़-छाड़ के मामले में सरकार का पुराना इतिहास रहा है। यदि गृह मंत्रालय की सुनें तो 2014 में दायर आरटीआई का उत्तर देते हुए मंत्रालय ने कहा था कि हर महीने उसके पास केन्द्र सरकार से 7500 से 9000 के बीच लोगों और संस्थानों की जासूसी की माँग आती है। एक अन्य उदाहरण के तौर पर इस वर्ष जून में ही सरकार ने खुले तौर पर व्हाट्सऐप को एण्ड टू एण्ड इन्क्रिप्शन (यानी मेसेज और कॉल की गोपनीयता) हटाने को कहा। जिसका व्हाट्सऐप ने सरकार पर निजता के अतिक्रमण का केस लगा कर प्रतिरोध किया था। लेकिन सरकार अब डेटा की चोरी पुख़्ता करने के लिये एक नया बिल लाने की योजना बना रही है। इसे सामान्य तौर पर प्राइवेसी बिल (पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन बिल) भी कहा जाता है। इस बिल की अभी कोई स्पष्ट संरचना नहीं है लेकिन सरकार की नीयत स्पष्ट है; डेटा का केन्द्रीयकृत भण्डारण जिसका इस्तेमाल जासूसी के लिए करना। साथ ही बड़ी कम्पनियों को मुनाफ़ा पीटने के लिए डेटा मुहैया कराना।

सवाल उठने पर हमेशा की तरह सरकार का जवाब था कि उसने कुछ भी गैर-क़ानूनी नहीं किया है और यह सभी राष्ट्रीय सुरक्षा को केन्द्र में रख कर किया गया है। क़ानून बनाने वाले आप तो अपनी चोरी, डकैती और गुण्डागर्दी को जायज़ ठहराना कौन सा मुश्किल काम है। और बात रही राष्ट्रीय सुरक्षा की तो यह जासूसी भी उसी तरह राष्ट्रीय हित में है जैसे मोदी जी के विश्व भ्रमण का सपना भारत की अन्तरराष्ट्रीय कूटनीति के हित में था।

ख़ुफ़िया संस्थानों के माध्यम से जासूसी और क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यकर्ताओं की जानकारी एकत्र करना कोई नई बात नहीं है। यह हमेशा से होता आया है। अंग्रेज़ों ने किया, आज़ाद भारत में काँग्रेस और अन्य सरकारों ने किया और अब भाजपा सरकार भी वही कर रही है। तकनीक जितनी उन्नत होती जाएगी वैसे-वैसे जासूसी भी उन्नत होती जाएगी। लेकिन क्रान्तिकारी चेतना कहीं सालों पीछे तो रह नहीं जाएगी। निश्चित ही क्रान्तिकारियों को सजग रहने और अपने काम के तौर-तरीक़ों में परिवर्तन लाने के ज़रूरत है। साथ ही अपनी क्रान्तिकारी धरोहर से सीखने की भी आवश्यकता है। भगत सिंह से लेकर चन्द्रशेखर आज़ाद तक अंग्रेज़ों के जासूसों और मुख़बिरों को चकमा देते हुए अपना काम करते रहे। सत्ता के पास हमेशा उन्नततम तकनीक होती है लेकिन वहाँ भी इन्सान ही काम करते हैं इसके अलावा क्रान्तिकारी ताक़तें जनता के बीच पैठी होती हैं। उनकी इसी ताक़त से यह जनविरोधी सरकारें डरी होती हैं।

# मज़दूर बस्तियों में बीमारियों का बोलबाला और निजी अस्पतालों की बेतहाशा लूट

**– भारत**

कोरोना से हुई मौतों ने साफ़ कर दिया है कि मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था और निजी मालिकाना सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराने में बाधक है। आज़ादी के बाद से आज तक पूरे देश के लोगों के लिए नि:शुल्क व सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था मुहैया नहीं हो सकी है। जिनके पास पैसा है उनके लिए वेदान्ता, फ़ोर्टिस और अपोलो जैसे अस्पताल हैं, वहीं देश में आज भी मेहनतकश लोग छोटी-छोटी बीमारियों से मर जाते हैं। कोरोना में जिस तरह लोग ऑक्सीजन व बेड की कमी से मर रहे थे, उससे यह बात और स्पष्ट हो गयी है कि इस पूँजीवादी व्यवस्था में इंसानों की जान की कोई अहमियत नहीं है। एक तरफ़ लोग मर रहे थे और दूसरी तरफ़ प्राइवेट अस्पताल मुनाफ़ा पीट रहे थे और आज मुनाफ़ाख़ोरों की वफ़ादार मोदी सरकार बेशर्मी से दावा कर रही है कि कोरोना के दौर में ऑक्सीजन की वजह से एक भी मौत नहीं हुई।

कोरोना से पहले भी मेहनतकश आबादी तक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच नहीं थी। एक आँकड़े के अनुसार भारत में 1456 लोगों पर 1 डॉक्टर है। प्रचलित मानक के अनुसार यह अनुपात 1000:1 होना चाहिए। इसी से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि भारत में लोग आज भी क्यों छोटी-छोटी बीमारियों से मरते हैं। अगस्त 2017 में गोरखपुर के बी.आर.डी कॉलेज में 100 से अधिक बच्चे ऑक्सीजन की सप्लाई रुकने की वजह से मारे गए थे।

दूसरी तरफ़ सरकार भी स्वास्थ्य सेवाओं का बजट कम ही रखती है। सण्डे गार्डियन की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत उन देशों में से है जो स्वास्थ्य पर बजट का सबसे कम हिस्सा व्यय करते हैं। भारत में पूरी जी.डी.पी का 1.26% ही स्वास्थ्य पर ख़र्च होता है, जबकि बांग्लादेश और पाकिस्तान जैसे देश भी जी.डी.पी. का 3 प्रतिशत स्वास्थ्य पर ख़र्च करते हैं।

मज़दूर आबादी तो गन्दी झुग्गियों से लेकर घुटन भरे कारख़ाने तक हर जगह से उत्पन्न स्वास्थ्य समस्याओं से घिरे रहती है। कारख़ानों में सुरक्षा से लेकर सफ़ाई सम्बन्धी बुनियादी इन्तज़ाम तक नहीं होते हैं। कारख़ानों में काम करने के कारण मज़दूर तमाम प्रकार की बीमारियों से जूझते हैं। बहुत-से मज़दूरों में साँस से सम्बन्धित बीमारियाँ पायी जाती हैं और कइयों की देखने की क्षमता कम हो जाती है। दूसरी तरफ़ श्रम क़ानूनों में ई.एस.आई की सेवाएँ सिर्फ़ काग़ज़ों की शोभा बढ़ाती हैं। देश में 93% मज़दूर असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। बवाना से लेकर पुणे और चेन्नई तक में कहीं भी श्रम क़ानून लागू नहीं होते हैं। मज़दूरों को न्यूनतम वेतन तक नहीं मिलता, ई.एस.आई, पीएफ़ तो बहुत दूर की कौड़ी है। यहाँ तक कि हाथ कटने के बाद भी मालिक ई.एस.आई कार्ड नही बनाते हैं और छोटे-मोटे प्राइवेट अस्पताल से मरहम-पट्टी करवा कर निपटा देते हैं।

जिन झुग्गियों में मेहनतकश आबादी रहती है वहाँ के हालात भी नारकीय होते हैं, जो तमाम बीमारियों को जन्म देते हैं। गन्दी बजबजाती नालियाँ, टूटी-फूटी सड़कें, सड़कों पर भरता नाले का पानी, न सीवर की व्यवस्था, जगह-जगह पड़े कूड़े के ढेर; ये सभी बीमारियों को न्योता देते हैं। इसी का उदाहरण दिल्ली के शाहाबाद डेरी में देखने को मिला, जहाँ एक दिन की बारिश से ही सड़कों व घरों में पानी जमा हो गया और उस पानी में लगातार रहने के कारण कई लोग बीमार पड़ गए। इसके अलावा बारिश के मौसम में डेंगू-मलेरिया से हर साल मौतें होती रहती हैं।

सरकारी अस्पतालों के जर्जर होते हालात से हम सब परिचित हैं। अस्पतालों में डॉक्टरों से लेकर बजट की कमी रहती है जिसके कारण जनता को तकलीफ़ झेलनी पड़ती है। 2016 के आँकड़ों के अनुसार भारत मे 11,296 सरकारी अस्पताल हैं और 2019 के अनुमानित आँकड़ों के मुताबिक़ इनमें 7,13,886 बेड हैं यानी 10,000 लोगों पर 0.55 बेड। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि सरकारी अस्पतालों के हालात क्या हैं और क्यों कोरोना से इतनी मौतें हुई। निजीकरण को बढ़ावा देने में लगी सरकार सारे सरकारी उपक्रम बेचने के बाद सरकारी अस्पतालों को भी ख़त्म करने में लगी है। पहले तो मेहनतकशों की आबादी किसी तरह सरकारी अस्पतालों में इलाज करवा रही थी, पर अब यह भी मुश्किल होता जा रहा है।

निजी अस्पतालों का धन्धा आज के समय में सबसे अधिक मुनाफ़े का धन्धा है। कोरोना के दौरान ये निजी अस्पताल एक दिन की फ़ीस लाखों में ले रहे थे। इस दौरान ऑक्सीजन सिलेण्डर की क़ीमत चालीस-पचास हज़ार रुपये पहुँच गयी थी। मोदी के कहे अनुसार मुनाफ़ाख़ोरों ने कोरोना में अच्छे से आपदा को अवसर में तब्दील किया। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में निजी क्षेत्र द्वारा किया गया निवेश कुल निवेश का 75 प्रतिशत है। यह पूरी दुनिया में स्वास्थ्य सेवाओं के अन्तर्गत निजी क्षेत्र की सबसे बड़ी भागीदारियों में से एक है। इस तरह ये कम्पनियाँ इस देश के आम आदमी के स्वास्थ्य की एवज़ में मोटा मुनाफ़ा कूट रही हैं। जब निजी अस्पतालों का लक्ष्य ही मुनाफ़ा कमाना है तो उनको बीमारियों के बचाव और रोकथाम यानि प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं में कोई दिलचस्पी भला क्यों होगी, वे केवल बीमारियाँ हो जाने पर

**(पेज 10 पर जारी)**

# मेहनतकशों को अपनी असली आज़ादी हासिल करने के लिए नयी जंगे-आज़ादी की तैयारी करनी होगी !

(पेज 1 से आगे)

साम्राज्यवाद का छोटा साझीदार है। 15 अगस्त, 1947 को भारत विदेशी कर्जे से पूरी तरह मुक्त ही नहीं था बल्कि उल्टे ब्रिटेन पर भारत का 16.12 करोड़ रुपये का कर्ज़ था। लेकिन आज भारत पर 40,000 अरब रुपये से भी अधिक का विदेशी कर्ज़ लदा हुआ है (स्रोत: रिज़र्व बैंक)। इसका अन्दाज़ा बस इसी बात से लगाया जा सकता है कि यह रक़म भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के 21 प्रतिशत से भी ज़्यादा है। नये विदेशी कर्ज़ों का लगभग 40 प्रतिशत तो सिर्फ़ पुराने कर्ज़ों का ब्याज भरने में ही चला जाता है। इतना ही नहीं, सरकार पर घरेलू कर्ज़ों का बोझ इतना अधिक है कि केन्द्र और राज्य सरकारों का लगभग आधा राजस्व कर्ज़ भरने में ही निकल जाता है। मोदी सरकार के आने के बाद इसमें और भी तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है।

बेशक, इन 74 वर्षों के दौरान कृषि और औद्योगिक, दोनों उत्पादनों में भारी बढ़ोत्तरी हुई है। यह बढ़ोत्तरी पूँजीपतियों की हिक़मत और साहस के बलबूते पर नहीं हुई है, जिसका कि बुर्जुआ मीडिया लगातार गुणगान करता रहता है। इसकी बुनियाद करोड़ों मज़दूरों और किसानों की अथक मेहनत के दम पर और उनके ख़ून-पसीने को निचोड़कर खड़ी की गयी है। लेकिन उत्पादन में इस ज़बर्दस्त बढ़ोत्तरी का लाभ किसको मिला है? अरबपतियों की तादाद के मामले में भारत दुनिया में तीसरे नम्बर पर पहुँच गया है। करोड़पतियों की संख्या में भी भारी बढ़ोत्तरी हुई है। लेकिन दूसरी ओर देश के ग़रीबों की संख्या में इससे कहीं तेज़ी से वृद्धि हुई है। ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के अनुसार कोरोना काल के लॉकडाउन में भी भारत के चन्द अरबपतियों की सम्पत्ति में 35% तक वृद्धि हुई है। हर मन्दी छोटी पूँजियों के बड़ी पूँजी द्वारा निगले जाने का दौर भी होता है। इस दौर में तमाम छोटे और मँझोले पूँजीपति तबाह होते हैं और उनकी पूँजी व परिसम्पत्तियों को बड़े इज़ारेदार पूँजीपति निगलते हैं और इस प्रकार मन्दी में मुनाफ़े की गिरती दर के बावजूद पूँजी का केन्द्रीकरण होता है और बड़े इज़ारेदार पूँजीपतियों की पूँजी में बढ़ोत्तरी होती है। सन् 2009 से अब तक इन अरबपतियों की सम्पत्ति में 90% बढ़ोत्तरी हो चुकी है, यानी पिछले 12 साल में इनकी दौलत लगभग दोगुनी हो गयी है। दूसरी ओर, सरकारी आँकड़ों के मुताबिक़, लगभग 30 प्रतिशत आबादी आज भी ग़रीबी रेखा के नीचे जीती है। लेकिन देश के प्रमुख अर्थशास्त्री यह साबित कर चुके हैं कि ग़रीबी रेखा का पैमाना सरासर ग़लत है और वास्तव में लगभग आधी आबादी ग़रीबी में जी रही है।

मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्रित्व काल में जब देश की अर्थव्यवस्था 8 प्रतिशत की दर से कुलाँचे भर रही थी, तब भी संयुक्त राष्ट्र मानव विकास सूचकांक के अनुसार भारत 177 देशों की सूची में 124वें स्थान से नीचे खिसककर 127वें स्थान पर पहुँच गया था। आज मोदी राज में ग़रीबी, भुखमरी, दवा-इलाज की कमी और जीवन की गुणवत्ता के तमाम सूचकांकों पर भारत दुनिया के सबसे ग़रीब देशों के साथ बिल्कुल निचली पायदानों पर पहुँच गया है। भारत में औसत आयु चीन और श्रीलंका के मुकाबले 7 वर्ष कम और भूटान के मुकाबले भी 2 वर्ष कम है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार पाँच वर्ष से कम के बच्चों की मृत्यु दर चीन के मुकाबले तीन गुना, श्रीलंका के लगभग छह गुना और यहाँ तक कि बंगलादेश और नेपाल से भी ज़्यादा है।

एक ओर विकास के आँकड़े उछाले जा रहे हैं दूसरी ओर देश में ग़रीबों, बेरोजगारों, बेघर लोगों की तादाद भी लगातार बढ़ती गयी है। देश की लगभग 47 करोड़ मज़दूर आबादी में से 93 प्रतिशत, या 43 करोड़ मज़दूर असंगठित क्षेत्र में धकेल दिये गये हैं जहाँ वे बिना किसी क़ानूनी सुरक्षा के ग़ुलामों जैसी परिस्थितियों में काम करने के लिए मजबूर हैं। इनमें से बहुत बड़ी संख्या ने पिछले डेढ़ साल में अपना रोज़गार खो दिया है। भारत में अर्थव्यवस्था के आँकड़ों पर नज़र रखने वाली प्रमुख संस्था, सेण्टर फ़ॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकोनॉमी के अनुसार इस साल केवल मई महीने में ही डेढ़ करोड़ से ज़्यादा लोगों ने रोज़गार गँवा दिया है। इस साल के शुरुआती पाँच महीनों में ही ढाई करोड़ से ज़्यादा लोग रोज़गार गँवा चुके हैं। कोरोना की पहली लहर के आगमन के पहले ही फ़रवरी 2020 में बेरोज़गारी दर 6.2 फ़ीसदी तक पहुँच चुकी थी। उसके बाद के लॉकडाउन में करोड़ों लोगों ने रोज़गार गँवाया और अप्रैल 2020 में बेरोज़गारी दर 24 फ़ीसदी तक पहुँच गयी। पिछले पूरे साल भर भी औसत बेरोज़गारी दर 6-7 प्रतिशत बनी रही। मई 2021 में देशव्यापी बेरोज़गारी दर 11.9 फ़ीसदी तक पहुँच गयी। मई 2021 में शहरी क्षेत्र में बेरोज़गारी दर 14.73 प्रतिशत और ग्रामीण क्षेत्र में 10.63 प्रतिशत थी। युवाओं और महिलाओं को ज़्यादा बड़े स्तर पर बेरोज़गारी का सामना करना पड़ रहा है। 20 वर्ष की आयु से 24 वर्ष की आयु वाले शहरी युवाओं में 37.9 प्रतिशत बेरोज़गार हैं। मगर इनके लिए सरकार के पास कोई योजना नहीं है।

एक रिपोर्ट के अनुसार 45 करोड़ भारतीय ग़रीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं, जिसका अर्थ है कि वे भुखमरी की कगार पर बस किसी तरह ज़िन्दा हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) की मानव विकास रिपोर्ट में भारत 188 देशों की सूची में खिसककर अब 131वें स्थान पर पहुँच गया है। दक्षिण एशियाई देशों में यह तीसरे स्थान पर, श्रीलंका और मालदीव जैसे देशों से भी पीछे चला गया है। हमारे देश में दुनिया के किसी भी हिस्से से अधिक, 46 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। एक तिहाई आबादी भूखी रहती है और यहाँ हर दूसरे बच्चे का वज़न सामान्य से कम है। वैश्विक भूख सूचकांक के आधार पर बनी 119 देशों की सूची में भारत 100वें स्थान पर है, उत्तर कोरिया और बंगलादेश जैसे देशों से भी नीचे। बेरोज़गारी की दर लगातार बढ़ती जा रही है। अगर बेरोजगारी बढ़ने की रफ़्तार यही रही तो हालात क्या होंगे इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। ऐसे में समझना मुश्किल नहीं है कि हर साल दो करोड़ रोज़गार देने का वादा करके सत्ता में आयी मोदी सरकार ने रोज़गार के आँकड़े जुटाने और जारी करने की व्यवस्था को 2018 में अचानक क्यों बन्द कर दिया!

इससे ज़्यादा शर्म की बात और क्या हो सकती है कि आज भी देश के एक-चौथाई से ज़्यादा लोग अशिक्षित हैं। ग्रामीण इलाक़ों में तो 36 प्रतिशत लोग आज भी पढ़ना-लिखना नहीं जानते। दक्षिण एशिया के ग़रीब मुल्क़ों में भी प्रौढ़ शिक्षा दर और युवा/बाल शिक्षा दर दोनों के लिहाज़ से भारत चौथे स्थान पर है। शिक्षा में जो प्रगति हुई है वह भी तब फीकी लगने लगती है जब यह पता चलता है कि दुनिया का हर चौथा अशिक्षित व्यक्ति एक भारतीय है। करोड़ों बच्चे आज भी स्कूल नहीं जा पाते हैं। जो बच्चे जाते हैं, उनमें भी बड़ी संख्या में बच्चे कक्षा एक से आठवीं के बीच पढ़ाई छोड़ देते हैं। गाँवों और कस्बों ही नहीं, बड़े शहरों के ग़रीब इलाक़ों में भी बड़ी संख्या में स्कूलों के पास ढंग के कमरे, डेस्क, पीने का पानी, शौचालय जैसी न्यूनतम सुविधाएँ भी नहीं हैं। जब बड़ी संख्या में स्कूल बढ़ाने की ज़रूरत है, तब सरकारें लगातार सरकारी स्कूलों को बन्द कर रही हैं। हर राज्य में लाखों की संख्या में शिक्षकों के पद ख़ाली पड़े हुए हैं। एक के बाद एक सरकारें शिक्षा पर ख़र्च बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 6 प्रतिशत कर देने के वादे करती रही है, लेकिन केन्द्र और राज्य सरकारों का शिक्षा पर ख़र्च 1991-92 में 4 प्रतिशत से घटकर 2021 में 3.1 प्रतिशत रह गया। पिछले वर्षों के दौरान तो सारा जोर उच्च शिक्षा और शिक्षा के निजीकरण पर रहा है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में तो स्थिति और भी बुरी है। भारत स्वास्थ्य पर अपने जीडीपी का जितना ख़र्च करता है, वह कम्बोडिया, म्यांमार, तोगो, सूडान, गिनी और बुरुंडी जैसे ग़रीब देशों से भी कम है। संयुक्त राष्ट्र की एक मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार "भारत के कुछ शहरों में प्रौद्योगिकीय उछाल से ख़ुशहाली आयी हुई है, लेकिन हर ग्यारह में से एक भारतीय बच्चा ऐसे इलाज के अभाव में पाँच वर्ष का होने से पहले ही मर जाता है जो मामूली प्रौद्योगिकी और बहुत कम ख़र्च पर उपलब्ध हो सकता है।"

आज़ादी के 74 वर्षों में तमाम सरकारें शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी जनता को मुहैया नहीं करा पायी हैं। प्रसिद्ध मेडिकल पत्रिका 'लैंसेट' के एक अध्ययन के मुताबिक़, स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और लोगों तक उनकी पहुँच के मामले में भारत विश्व के 195 देशों में 145वें पायदान पर है। पिछले दस वर्षों में स्वास्थ्य सेवाओं पर सरकार ने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का औसतन 1.1% से 1.5% तक ख़र्च किया। दूसरे देशों से तुलना करें तो क्यूबा में 11.74%, जर्मनी में 11.25%, अमरीका में 8.5%, ब्राज़ील में 3.96%, दक्षिण अफ्रीका में 4.46% और चीन में 3.02% जीडीपी का हिस्सा स्वास्थ्य सेवाओं पर ख़र्च किया जाता है। भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य पर ख़र्च होने वाला जीडीपी का प्रतिशत पिछले 10 वर्ष से ज़्यादा समय से 1% के आसपास ही बना हुआ है। स्वास्थ्य पर किये गये कुल ख़र्च का 27% हिस्सा ही सरकार द्वारा ख़र्च किया जाता है और लगभग 73% हिस्सा जनता को अपनी जेब से देना पड़ता है। भारत में कुल बीमार लोगों में 23% बीमार लोग इलाज का ख़र्च उठा ही नहीं सकते हैं। आज भी देश में 1456 लोगों पर 1 डॉक्टर है जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 1000 लोगों पर 1 डॉक्टर होना चाहिए। भारत में नर्स और आबादी का अनुपात 1:670 है जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार यह अनुपात 1:300 होना चाहिए। इनमें से भी ज़्यादातर डॉक्टर, नर्स आदि शहरों में हैं, गाँवों, छोटे क़स्बों आदि में इनकी भारी कमी है। 70 फ़ीसदी स्वास्थ्य सेवाओं का बुनियादी ढाँचा देश के 20 बड़े शहरों तक ही सीमित है। देशभर में 30 फ़ीसदी लोग प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं तक से वंचित हैं।

भारत की अधिकांश आबादी लगातार जिस खाद्य संकट का सामना करती है उसके कारण स्वास्थ्य की स्थिति और भी गम्भीर हो जाती है। सरकारी आंकड़ां के मुताबिक आज से 50 साल पहले 5 व्यक्तियों का परिवार एक साल में जितना अनाज खाता था। आज उससे 200 किलो कम खाता है। भोजन में विटामिन और प्रोटीन जैसे जरूरी पौष्टिक तत्वों की लगातार कमी होती गयी है। आम आदमी के लिए प्रोटीन के मुख्य स्रोत दालों की कीमत पिछले कुछ सालों में जिस कदर बढ़ी है उससे बहुत से लोग इससे भी वंचित हो गये हैं। हरी सब्ज़ियाँ, दाल और दूध तो ग़रीब आदमी के भोजन से गायब ही हो चुके हैं। इसी का नतीजा है कि कुपोषण के कारण कम वजन वाले बच्चों की सबसे बड़ी संख्या भारत में है। ग्रामीण क्षेत्रों में बहुतेरे परिवारों को दोनों वक़्त या सप्ताह के सातों दिन खाना नहीं मिलता। आज भी लगभग दस हज़ार बच्चे रोज़ कुपोषण और उससे होने वाली बीमारियों के कारण मर जाते हैं। दूसरी ओर, भारत सरकार बाल-पोषण कार्यक्रम के लिए आवण्टन घटाती जा रही है।

गाँवों से उजड़कर भारी आबादी आज शहरों के उद्योगों और निर्माण परियोजनाओं में मज़दूरी कर रही है। ऐसे लगभग सारे मज़दूर दिहाड़ी, अल्पकालिक या ठेके के मज़दूर हैं जिन्हें किसी तरह की कोई रोज़गार या सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती। शहरों के उद्योगों में 10-12 से लेकर 14 घण्टे तक काम करने के बाद छोटे शहरों में 200 रुपये से लेकर दिल्ली में 300 रुपये तक दिहाड़ी मिलती है और वह भी पूरे महीने नहीं मिलती। बेरोज़गार मज़दूरों की भारी आबादी के कारण पूँजीपतियों को मनमानी दरों और शर्तों पर काम कराने के लिए मज़दूर मिलने में कोई कठिनाई नहीं होती। शहरी इलाक़ों में जहाँ ये मज़दूर झुग्गियों और कच्ची बस्तियों में रहते हैं उनकी हालत किसी नर्क से कम नहीं है।

मज़दूरों ने लड़कर लम्बे समय में जो अधिकार हासिल किये थे, उन्हें एक-एक करके छीना जा रहा है। मोदी सरकार ने इस प्रक्रिया को और तेज़ करते हुए 44 श्रम क़ानूनों को ख़त्म करके 4 लेबर कोड बना दिये हैं जिनका एक ही मकसद है – मज़दूरों की श्रमशक्ति की खुली लूट की छूट पूँजीपतियों को देना और मज़दूरों के संगठित होकर आवाज़ उठाने के अधिकार को ख़त्म कर देना।

कुल मिलाकर आज़ादी के इन 74 सालों के सफ़र ने देश की आम जनता पर तकलीफ़ों और तबाहियों का कहर बरपा किया है जबकि दूसरी ओर ग़रीबी के इस महासागर में ऊपर की पन्द्रह से बीस फ़ीसदी आबादी के लिए विलासिता और हर क़िस्म के ऐशो-आराम से भरपूर टापू सजाये गये हैं। एक तरफ अस्सी प्रतिशत आबादी अभावों और दुःखों के अँधेरे में दिन काट रही है, दूसरी ओर पूँजीपतियों, व्यापारियों, ठेकेदारों, अफसरों, नेताओं और बहुत बड़े परजीवी मध्य वर्ग के लिए जगमजगाते मॉल, हर क़िस्म की सुख-सुविधाओं से लैस अपार्टमेण्ट और कोठियाँ, फ़ाइव स्टार अस्पताल और एअर-कंडीशंड ल-कॉलेज खुल रहे हैं। दुनिया की महँगी से महँगी विलासिता की वस्तुएँ देश के महानगरों में ही नहीं, छोटे शहरों तक में उपलब्ध हैं। गाँवों में धनी किसानों, कुलकों-फ़ार्मरों और खाते-पीते मध्यम किसानों को भी अपने आप में पूँजीवादी लूट और शोषण से कोई शिकायत नहीं है, क्योंकि वे ख़ुद ग़रीब किसानों व खेतिहर मज़दूरों के पूँजीवादी शोषक और लुटेरे हैं। उनकी शिकायत बड़े पूँजीपति वर्ग से है, जो कि पूँजीवादी शासक वर्ग का प्रमुख हिस्सा है और खेती के क्षेत्र में गाँव के धनी किसानों-कुलकों के एकाधिकार को समाप्त कर रहा है। नतीजतन, गाँव का यह धनी किसान-कुलक आज काफ़ी चीख़-पुकार मचा रहा है, लेकिन यह मज़दूर वर्ग और आम ग़रीब मेहनतकश किसानों का मसला नहीं है, बल्कि पूँजीपति वर्ग के दो हिस्सों का आपसी अन्तरविरोध है।

लगातार चौड़ी होती जा रही शासक वर्गों और वंचितों-शोषितों की यह खाई दिन-ब-दिन मेहनतकशों के दिल में बग़ावत की आग को हवा दे रही है और इससे निपटने के लिए शासन अपने दमन तंत्र को मज़बूत बनाने में लगा हुआ है। आज़ाद भारत में देशी सरकार की गोलियों ने जनता का जितना ख़ून बहाया है उतना तो 200 वर्षों के ब्रिटिश राज में भी नहीं बहा होगा। जनता को एकजुट होने से रोकने के लिए जाति, धर्म, भाषा, इलाक़ा आदि-आदि के नाम पर लगातार टुकड़ों में बाँटने की साज़िशें जारी हैं। आरएसएस और भाजपा यह काम करने वाले सबसे बड़े गिरोह के रूप में शासक वर्गों की जमकर सेवा कर रहे हैं। लोगों को सोचने न दिया जाये, इसके लिए टीवी, अख़बार, फ़िल्में और पूरा मीडिया लगातार झूठ, अन्धविश्वास, जादू-टोने, पिछड़े मूल्यों-मान्यताओं, अश्लीलता और अज्ञान परोसने में लगा हुआ है। लेकिन शासक भी जानते हैं कि ये तमाम हथकण्डे भी मेहनतकशों को एक न एक दिन जागने और उठ खड़े होने से रोक नहीं सकते। इसीलिए इस व्यवस्था के दूरगामी पैरोकार जनता के असन्तोष पर पानी के छींटे डालने और उसमें इसी व्यवस्था के भीतर कुछ पा लेने की उम्मीद जगाने के वास्ते तरह-तरह की सुधारवादी योजनाएँ पेश कर रहे हैं।

शासक वर्गों को अपनी आज़ादी का जश्न मनाने दीजिए, पर मेहनतकशों को अपनी असली आज़ादी के लिए लड़ाई की तैयारियों में जुटना होगा। वह आज़ादी जिसका सपना भगतसिंह और तमाम क्रान्तिकारी शहीदों ने देखा था। वह आज़ादी जो पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के शिकंजे से इस देश को आज़ाद करेगी और राज, समाज और उत्पादन के पूरे ढाँचे पर मेहनतकश वर्गों का अधिकार क़ायम करेगी।

## अमेरिका की अफ़ग़ानिस्तान से वापसी

# बीस साल से जारी युद्ध में तबाही के बाद अफ़ग़ानिस्तान गृहयुद्ध की ओर

– आनन्द सिंह

'आतंक के ख़िलाफ़ युद्ध' के नाम पर दो दशक तक अफ़ग़ानिस्तान को आतंकी युद्ध में तबाह और बर्बाद करने के बाद अन्ततः अमेरिकी साम्राज्यवाद ने 31 अगस्त तक अफ़ग़ानिस्तान से अपनी सेना वापस बुलाने का ऐलान कर दिया है। लेकिन अफ़ग़ानिस्तान को जिस हाल में अमेरिका और नाटो की सेनाएँ छोड़कर जा रही हैं वह 2001 से भी बुरा है। तालिबान लगातार अफ़ग़ानिस्तान के विभिन्न भागों पर अपनी पकड़ मजबूत बनाता जा रहा है और काबुल की सरकार की अफ़ग़ानिस्तान पर पकड़ लगातार कमज़ोर होती जा रही है। अमेरिकी ख़ुफ़िया एजेंसियाँ ख़ुद यह दावा कर रही हैं कि नाटो की सेना की वापसी के बाद काबुल की सरकार भहराकर गिर जाएगी और पूरे देश में गृहयुद्ध जैसा माहौल हो जाएगा। तालिबान का अगर पूरे देश पर फिर से क़ब्ज़ा न भी हो तब भी इतना तो तय है कि वह सबसे बड़ी ताक़त बनकर उभरेगा और अफ़ग़ानिस्तान को एक बार फिर से कट्टर इस्लामी अमीरात में तब्दील करने की पूरी कोशिश करेगा। ये ख़ौफ़नाक हालात अफ़ग़ानी लोगों के लिए पहले से कहीं ज़्यादा तबाही और बर्बादी का सबब बनेंगे और साथ ही मध्य एशिया, पश्चिम एशिया और दक्षिण एशिया के समूचे क्षेत्र में भी अशान्ति और अस्थिरता पैदा करेंगे। इसकी वजह से इस इलाक़े के सामरिक समीकरणों और अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा के स्वरूप में भी बुनियादी बदलावों की आशंका है। इसलिए इस समस्या के सभी ऐतिहासिक व राजनीतिक पहलुओं को समझने की ज़रूरत है।

### अफ़ग़ानिस्तान में साम्राज्यवादी हस्तक्षेप और तालिबान के उभार का इतिहास

मध्य एशिया और दक्षिण एशिया के सन्धिबिन्दु पर स्थित होने की वजह से अफ़ग़ानिस्तान 19वीं सदी से ही साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का अखाड़ा रहा है। 19वीं सदी के अन्त और 20वीं सदी की शुरुआत में ब्रिटिश साम्राज्य और रूसी ज़ार साम्राज्य के बीच अफ़ग़ानिस्तान पर क़ब्ज़ा करने की होड़ थी, हालाँकि वे उसपर कभी भी पूरा क़ब्ज़ा करने में कामयाब नहीं हो पाये। 1919 में तीसरे आंग्ल-अफ़ग़ान युद्ध में अंग्रेज़ों को धूल चटाने के बाद अफ़ग़ानिस्तान पूरी तरह से आज़ाद हो गया। साम्राज्यवादी हस्तक्षेप से आज़ादी मिलने बाद अफ़ग़ानी बादशाह ग़ाज़ी अमानुल्ला ख़ान ने तुर्की के मुस्तफ़ा कमाल अतातुर्क की तर्ज़ पर अफ़ग़ानिस्तान का आधुनिकीकरण करने की कोशिश की परन्तु वह कामयाब नहीं हो सका। उसके बाद 1973 तक अफ़ग़ानिस्तान में बाहदशाहत क़ायम रही। 1973 में बादशाह ज़ाहिर शाह के तख़्ता पलट के बाद बादशाहत का ख़ात्मा हुआ और दाऊद ख़ान पहला राष्ट्रपति बना। 1978 में एक और तख़्तापलट हुआ जिसके बाद वामपन्थी पार्टी 'पीपल्स डिमोक्रेटिक पार्टी ऑफ़ अफ़ग़ानिस्तान' (पीडीपीए) सत्ता में आयी।

1978 के तख़्तापलट को सावर क्रान्ति के नाम से जाना जाता है क्योंकि यह फ़ारसी कैलेण्डर के दूसरे महीने सावर में हुआ था। संभवतः यह नामकरण अक्टूबर क्रान्ति की तर्ज़ पर किया गया था, परन्तु इसमें अक्टूबर क्रान्ति जैसा कुछ भी नहीं था। यह मज़दूरों और किसानों के जनउभार की बजाय सैन्य शैली में किया गया तख़्तापलट था। पीडीपीए का सामाजिक आधार बेहद सीमित था। उसमें मुख्य तौर पर परचम और ख़ल्क़ नामक दो धड़े थे। परचम धड़े का सामाजिक आधार शहरी मध्यवर्ग के बीच था और उसमें राष्ट्रवादी झुकाव था जबकि ख़ल्क़ मज़दूरों के बीच लोकप्रिय था और वह वर्गीय आधार पर राजनीति करने का पक्षधर था। इन दोनों ही धड़ों का आधार अफ़ग़ानिस्तान के ग्रामीण इलाक़ों में न के बराबर था जबकि उस समय वहाँ की 86 फ़ीसदी आबादी गाँवों में रहती थी।

पीडीपीए जब सत्ता में आयी तो उस समय अफ़ग़ानिस्तान एक बेहद पिछड़ा हुआ समाज था। वहाँ एक भी गाँव में बिजली नहीं थी और रेलवे का नामोनिशान तक नहीं था। क़रीब डेढ़ करोड़ की आबादी वाले इस मुल्क में केवल 5 फ़ीसदी लोगों को ही तालीम हासिल थी। अफ़ग़ानिस्तान के अलग-अलग हिस्सों में पश्तून, ताजिक, उज़बेक, हज़ारा, तुर्कमान, और बलूच जातियों के इस्लामिक कबीले रहते थे जो बेहद पिछड़े सामन्ती सम्बन्धों व रीति-रिवाज़ों से बँधे थे। खेती-योग्य 45 फ़ीसदी ज़मीन पर ऊपर के 5 फ़ीसदी भूस्वीमियों का क़ब्ज़ा था। औद्योगिक विकास बेहद सीमित था और मज़दूर वर्ग की तादाद बहुत कम थी। इन हालात में सत्ता में आने के बाद पीडीपीए ने ग़रीब किसानों और मेहनतकशों के बीच पार्टी का आधार विस्तारित किये बिना ही आधुनिकीकरण और रैडिकल भूमि सुधारों की मुहिम छेड़ दी। ग्रामीण कबीलों के सरदार और भूस्वामियों की अपने-अपने कबीलों पर पकड़ थी, लिहाज़ा वे लोगों को यह समझाने में कामयाब होने लगे कि पीडीपीए की सत्ता उनकी तहजीब और मज़हब की विरोधी है। उस समय अफ़ग़ानिस्तान के पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान में जनरल ज़िया-उल-हक़ की फ़ौजी हुकूमत क़ायम थी और वह भारत के साथ होड़ में पाकिस्तान को रणनीतिक बढ़त दिलाने के लिए अफ़ग़ानिस्तान की सत्ता पर अपना नियंत्रण चाहता था। इस मक़सद से उसने पाकिस्तान की ख़ुफ़िया एजेंसी आईएसआई को अफ़ग़ानिस्तान के पश्तून लोगों के बीच पीडीपीए की सरकार के ख़िलाफ़ ज़हर उगलने के लिए लगा दिया। इसमें उसे सऊदी अरब से आर्थिक व कट्टरपन्थी वहाबी विचारधारा के रूप में मदद मिली। इस प्रकार काबुल की सत्ता के ख़िलाफ़ जेहाद छेड़ने वाले इस्लामी लड़ाके अस्तित्व में आते हैं जिन्हें मुजाहिद्दीन कहा जाता है। इन मुजाहिद्दीनों को इस्लामिक कट्टरपन्थ की ज़हरीली वैचारिक ख़ुराक़ अफ़ग़ानिस्तान की सीमा से लगे पाकिस्तानी प्रान्त नॉर्थ वेस्ट फ्रण्टियर प्रोविंस (जिसे आज ख़ैबर पख़्तूनख़्वा के नाम से जाना जाता है) के मदरसों में मिली। यही वह समय था जब अमेरिका ने मुजाहिद्दीनों को बढ़ावा देने के लिए आर्थिक व सैन्य मदद की नीति पर अमल करना शुरू किया। तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ब्रजेंस्की ने ख़ैबर दर्रे का दौरा किया और एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में बन्दूक लेकर वहाँ मुजाहिद्दीनों को सम्बोधित करते हुए कहा कि अब यही उन्हें काफ़िरों से मुक्ति दिला सकते हैं।

ये वो हालात थे जिनमें 1979 में सोवियत संघ की सामाजिक साम्राज्यवादी हुकूमत ने अफ़ग़ानिस्तान में सैन्य हस्तक्षेप की शुरुआत की जिसके बाद अफ़ग़ानिस्तान दो महाशक्तियों के बीच जारी शीतयुद्ध का नया अखाड़ा बन गया। कार्टर के बाद अमेरिका के अगले राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने सोवियत संघ को हराने के लिए अफ़गानी जेहादियों को आर्थिक मदद और अत्याधुनिक हथियारों की आपूर्ति को अभूतपूर्व रूप से बढ़ा दिया। यहाँ तक कि रीगन ने मुजाहिद्दीनों के नेताओं को व्हाइट हाउस में ससम्मान आमंत्रित किया और उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा कि वे नैतिक रूप से अमेरिका के स्थापक वाशिंगटन और जैफ़रसन जैसे नेताओं के समतुल्य हैं। रीगन ने मुजाहिद्दीनों के जेहाद को इतना महत्वपूर्ण माना कि उस समय लॉन्च होने वाले अमेरिकी अन्तरिक्ष यान कोलम्बिया को अफ़गानियों के संघर्ष के नाम समर्पित कर दिया गया। यही वह दौर था जब सऊदी अरब के धनपशु ओसामा बिन लादेन ने अमेरिका की मदद से सोवियत संघ के ख़िलाफ़ जेहाद करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान-पाकिस्तान सीमा को अपना अड्डा बनाया।

अमेरिकी हस्तक्षेप के बाद सोवियत संघ समर्थित पीडीपीए की सत्ता कमज़ोर पड़ने लगी और उसे एक-एक करके तमाम सुधारों की नीतियाँ वापस लेनी पड़ीं। अमेरिका, पाकिस्तान और सऊदी अरब से समर्थन पाने वाले मुजाहिद्दीनों के सामने सोवियत सेना भी अपने मक़सद में कामयाब नहीं हो सकी और अन्ततः 1989 में उसे अफ़ग़ानिस्तान से वापसी करनी पड़ी। उसके बाद से ही पीडीपीए की सरकार की उल्टी गिनती शुरू हो चुकी थी। 1992 तक काबुल मुजाहिद्दीनों के क़ब्ज़े में आ चुका था। लेकिन मुजाहिद्दीनों के कई धड़ों के बीच आपस में सत्ता के लिए जंग छिड़ गयी जिससे अफ़ग़ानिस्तान बर्बरता के युग में प्रवेश करता गया। यही वह दौर था जब पाकिस्तान और सऊदी अरब की मदद से पश्तून मुजाहिद्दीनों के बीच से ही तालिबान नामक एक धुर इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठन वजूद में आता है जो अन्य मुजाहिद्दीनों से इस मायने में अलग था कि वह इस्लामिक क़ानून शरिया को तमाम कबायली क़ानूनों व रीति-रिवाजों के ऊपर रखने और एक सख़्त इस्लामी अमीरात क़ायम करने की बात करता था। सोवियत संघ की अफ़ग़ानिस्तान की वापसी और बाद में उसके पतन और अमेरिका द्वारा छेड़े गये खाड़ी युद्ध के बाद मुजाहिद्दीन अपने पूर्व आक़ा अमेरिका के भी विरोधी हो गए थे। इसी दौर में ओसामा बिन लादेन ने अल क़ायदा की स्थापना की और अमेरिका के ख़िलाफ़ जेहाद का ऐलान किया।

### तालिबान का क्रूर शासन और अमेरिकी साम्राज्यवाद से उसके बढ़ते अन्तरविरोध

1996 में तालिबान काबुल की सत्ता पर क़ब्ज़ा करने और अफ़ग़ानिस्तान में कट्टर इस्लामी अमीरात क़ायम करने में कामयाब हो जाता है जो वहाँ के आम लोगों, ख़ासकर महिलाओं, के लिए नरक के समान था। हर तरह के संगीत, नृत्य, मनोरंजन, फ़ैशन आदि को प्रतिबन्धित कर दिया गया और महिलाओं की नौकरी व लड़कियों की पढ़ाई पर सख़्ती से पाबन्दी लगा दी गयी। तालिबान के दौर में अफ़ग़ानिस्तान की अर्थव्यवस्था का आधार अफ़ीम की खेती और उसके व्यापार तथा मध्य एशिया और पाकिस्तान तथा ईरान के बीच होने वाले व्यापार पर कर था।

तालिबान के शासन में अल क़ायदा सहित तमाम इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठनों को फलने-फूलने के लिए अनुकूल माहौल मिला जिसकी वजह से उनके अमेरिका से अन्तरविरोध बढ़ते गए। 2001 में अल क़ायदा द्वारा अमेरिका पर 11 सितम्बर के आतंकी हमले के बाद अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान पर हमला कर दिया। ग़ौरतलब है कि 11 सितम्बर के आतंकी हमले से पहले ही तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश, उपराष्ट्रपति डिक चेनी और रक्षामंत्री डोनॉल्ड रम्सफ़ेल्ड की नवरूढ़िवादी सत्ता अफ़ग़ानिस्तान, इराक़, सीरिया और ईरान पर हमला करके पश्चिम एशिया के तेल व गैस भण्डार पर अपना क़ब्ज़ा करने की योजना बना चुकी थी। 11 सितम्बर की घटना ने उन्हें अपनी इस योजना को अमली जामा पहनाने का बहाना दे दिया।

अफ़ग़ानिस्तान पर हमले के दौरान अमेरिका ने तालिबान के विरोधी ताजिक, उज़बेक और हज़ारा जैसे ग़ैर-पश्तूनी जातियों के क़बीलों के गठबन्धन नॉर्दर्न एलायंस को समर्थन दिया। अमेरिका और नॉर्दर्न एलायंस के हमलों से तालिबान की सत्ता ध्वस्त हो गयी और उसके बाद हामिद करज़ई के नेतृत्व में नयी सरकार अस्तित्व में आयी जिसे अमेरिका की सरपरस्ती हासिल थी। इस सरकार में नॉर्दर्न एलायंस के घटक क़बीलों के सरदारों को भी शामिल किया गया। इस समय इसका मुखिया अशरफ़ ग़नी है। इस सरकार की भारत से भी क़रीबी है क्योंकि भारत कई दशकों से नॉर्दन एलायंस का सहयोगी रहा है। यह सरकार आर्थिक रूप से अफ़ीम के व्यापार, मालों के ट्रांजिट पर कर और विदेशी वित्तीय सहायता के सहारे टिकी हुई है। भारत ने भी पिछले दो दशकों के दौरान अफ़ग़ानिस्तान में अपनी रणनीतिक पकड़ मजबूत करने के मक़सद से वहाँ के बुनियादी ढाँचे को खड़ा करने में 3 अरब डॉलर का निवेश किया है।

### तालिबान का फिर से संगठित होना

अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करके अमेरिका ने तालिबान को सत्ता से तो हटा दिया था, परन्तु कुछ ही वर्षों के भीतर अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के पश्तून बाहुल्य इलाक़ों में उसने अपने आप को फिर से संगठित कर लिया। अमेरिकी हमले के दौरान बड़ी संख्या में अफ़ग़ान शरणार्थियों ने पाकिस्तान के ख़ैबर पख़्तूनख़्वाह प्रान्त में पनाह ली। पाकिस्तान की मदद से तालिबान ने इन शरणार्थियों के बीच से नये सिरे से लड़ाके तैयार किये जिनको वैचारिक ख़ुराक़ पाकिस्तान के मदरसों से मिलती रही, हालाँकि इसी बीच पाकिस्तान के भीतर तहरीक़-ए-तालिबान पाकिस्तान नामक संगठन खड़ा हो गया जो पाकिस्तान की सत्ता को ही अपना मुख्य दुश्मन मानने लगा और वहाँ आतंकवादी घटनाएँ अंजाम देने लगा।

तालिबान के फिर से संगठित हो जाने के बाद अमेरिका का अफ़ग़ानिस्तान युद्ध लम्बा खिंचता चला गया जिससे अमेरिकी सरकार का ख़र्च बढ़ने लगा और आर्थिक संकट के दौर में वह बोझ बनता चला गया। यही वजह है कि पिछले कई सालों से अमेरिकी रणनीतिकार अफ़ग़ानिस्तान से सेना वापस बुलाने पर ज़ोर दे रहे थे क्योंकि अमेरिकी सेना की मौजूदगी से अमेरिका को कोई रणनीतिक लाभ नहीं हासिल हो रहा था। बराक ओबामा के कार्यकाल से ही तालिबान से बातचीत की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। ट्रम्प के कार्यकाल में अफ़ग़ानिस्तान से अमेरिकी सेना की वापसी की तैयारियाँ होने लगी थीं। फ़रवरी 2020 में ही अमेरिका और तालिबान के बीच वापसी को लेकर समझौता भी हो चुका था जिसे वर्तमान बाइडेन प्रशासन लागू कर रहा है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा अफ़ग़ानिस्तान के लोगों पर थोपे गए इस आतंकी युद्ध के दौरान पिछले दो दशक में 2 लाख से भी ज़्यादा अफ़ग़ानियों की जान जा चुकी है। अफ़ग़ानिस्तान से अमेरिका की वापसी के बाद वहाँ लम्बे समय तक गृहयुद्ध की परिस्थिति जारी रहने की सम्भावना है जिससे आम अफ़ग़ानियों की ज़िन्दगी बद से बदतर होनी तय है।

(पेज 14 पर जारी)

# बीस साल से जारी युद्ध में तबाही के बाद अफ़ग़ानिस्तान गृहयुद्ध की ओर

(पेज 13 से आगे)

### अफ़ग़ानिस्तान में बदलते हालात की वजह से सामरिक समीकरणों में बदलाव के संकेत

अफ़ग़ानिस्तान में तालिबान के इस बढ़ते प्रभुत्व का ही यह नतीजा है कि जहाँ कुछ वर्षों पहले तक उसे एक आतंकी संगठन समझा जाता था वहीं अब तमाम देश उसके साथ बातचीत की प्रक्रिया शुरू कर रहे हैं जिनमें भारत भी शामिल है। भारत ने पिछले दो दशक के दौरान अफ़ग़ानिस्तान में अपने रणनीतिक और सामरिक हितों के मद्देनज़र सड़क, बाँध, बिजली घर तथा अन्य विकास कार्यों में क़रीब 3 अरब डॉलर का निवेश किया है जो तालिबान के बढ़ते प्रभुत्व की वजह से अब पानी में डूबता नज़र आ रहा है। इसलिए भागते भूत की लंगोटी भली वाले मुहावरे को चरितार्थ करते हुए भारत के फ़ासिस्ट हुक्मरान तालिबान से गुप्त बातचीत कर रहे हैं ताकि इस भारी निवेश को पूरी तरह से डूबने से बचाया जा सके और तालिबान को आर्थिक मदद का लालच देकर उसे लश्कर-ए-तोइबा और जैश-ए-मोहम्मद जैसे पाकिस्तानी आतंकी समूहों से दूरी बनाये रखने के लिए तैयार किया जा सके।

जहाँ तक पाकिस्तान का सवाल है तो वहाँ के फ़ौजी हुक्मरान तालिबान की बढ़त की वजह से दुविधा में हैं। जहाँ एक ओर तालिबान के बढ़ते प्रभुत्व से वे ख़ुश हैं क्योंकि इससे अफ़ग़ानिस्तान में भारत का प्रभाव कम होगा और भारत में आतंक का निर्यात करने और कश्मीर में अस्थिरता बढ़ाने में मदद मिलेगी, वहीं दूसरी ओर यह उनकी चिन्ता का सबब है कि अफ़ग़ानी तालिबान के मजबूत होने से पाकिस्तानी तालिबान (तहरीक़-ए-तालिबान पाकिस्तान) भी मजबूत होगा जिसका नतीजा पाकिस्तान के भीतर बढ़ती मज़हबी दहशतगर्दी के रूप में सामने आयेगा। ग़ौरतलब है कि पाकिस्तानी तालिबान पाकिस्तान की हुकूमत को अपना मुख्य शत्रु मानती है और वह अल-क़ायदा जैसे आतंकी संगठनों के सहयोग से दुनिया भर में इस्लामी जेहाद को फैलाना चाहती है। ग़ौर करने वाली बात यह भी है कि पाकिस्तानी तालिबान की पाकिस्तान में दहशतगर्दी से आजिज़ आकर पाकिस्तानी फ़ौज को 2014 में ख़ैबर पख़्तूनख़्वाह के उत्तरी वज़ीरिस्तान हिस्से में ऑपरेशन ज़र्ब-ए-अज़्ब के तहत फ़ौजी कार्रवाई करनी पड़ी थी। पाकिस्तान अफ़ग़ानी तालिबान को मनाने की फ़िराक़ में है कि वह पाकिस्तानी तालिबान को फैलने से रोके। पाकिस्तान के फ़ौजी हुक्मरान वहाँ की आवाम को यह बताते आये हैं कि अफ़ग़ानी तालिबान और पाकिस्तानी तालिबान के बीच फ़र्क़ है और पाकिस्तानी तालिबान भारत द्वारा समर्थित है। लेकिन पाकिस्तान के फ़ौजी हुक्मरानों को यह भी अच्छी तरह से पता है कि अफ़ग़ानी तालिबान और पाकिस्तानी तालिबान के बीच कोई चीन की दीवार नहीं है। अफ़ग़ानी तालिबान और पाकिस्तानी तालिबान दोनों में पश्तूनी लड़ाकों की बहुतायत है जो पाकिस्तान-अफ़ग़ान सीमा के दोनों ओर रहते हैं और जिनके बीच आपसी सम्बन्ध बेहद घनिष्ठ हैं। दोनों तरह के लड़ाकों को आतंकवाद की ज़हरीली वैचारिक ख़ुराक़ पाकिस्तान के मदरसों से ही मिलती है। इसलिए दोनों के बीच वैचारिक बिरादाराना भी बेहद मजबूत है। इसलिए तालिबान का उभार पाकिस्तान की अवाम के लिए भी बेहद ख़तरनाक है।

तालिबान के उभार के बाद अफ़ग़ानिस्तान का पड़ोसी मुल्क ईरान भी सत्ता परिवर्तन की परिस्थिति में अपने हितों की रक्षा करने के लिए तालिबान से बातचीत कर रहा है। ग़ौरतलब है कि हाल के वर्षों में अमेरिका के नेतृत्व वाले पश्चिमी साम्राज्यवादी खेमे के बरक्स रूस और चीन का नया साम्राज्यवादी खेमा उभरा है और सामरिक दृष्टि से ईरान इस नये खेमे का हिस्सा है। रूस भी तालिबान से बातचीत कर रहा है ताकि अफ़ग़ानिस्तान की उत्तरी सीमा से लगे उज़्बेकिस्तान, ताजिकिस्तान और तुर्कमेनिस्तान में अशान्ति न फैले। उधर चीन अफ़ग़ानिस्तान से अमेरिका की वापसी का लाभ उठाने की फ़िराक़ में है। तालिबान ने भी अपनी ओर से चीन के साथ बेहतर रिश्ते क़ायम करने की मंशा जतायी है। ग़ौरतलब है कि अफ़ग़ानिस्तान में कॉपर, कोयला, आयरन, गैस, मरकरी, सोना, लीथियम और थोरियम का अकूत भण्डार है। इस अकूत सम्पदा पर नियंत्रण पाने के अतिरिक्त चीन अपने महत्वाकांक्षी बेल्ट रोड पहल में अफ़ग़ानिस्तान को भी शामिल करना चाहता है। लेकिन चीन भी पाकिस्तानी तालिबान की बढ़ती ताक़त को लेकर आशंकित है। 62 बिलियन डॉलर के निवेश वाला चीन पाकिस्तान इकोनॉमिक कॉरिडॉर (जो बेल्ट रोड पहल का हिस्सा है) ख़ैबर पख़्तूनख़्वाह से होकर जाता है। लेकिन पाकिस्तानी तालिबान इस कॉरिडोर के निर्माण व अन्य विकास कार्यों में लगातार व्यवधान पहुँचा रहा है। अभी कुछ दिनों पहले ही पाकिस्तानी तालिबान ने एक बस पर आतंकी हमला किया जिसमें 9 चीनी मज़दूर मारे गये जो एक बाँध के निर्माण में लगे थे। इसके अलावा पाकिस्तानी तालिबान का सम्बन्ध ईस्ट तुर्केस्तान इस्लामिक मूवमेण्ट नामक आतंकी संगठन से भी है जो चीन के शिनजियांग प्रान्त में वीगर मुसलमानों के बीच सक्रिय है। ग़ौरतलब है कि चीन के शिनजियांग प्रान्त की सीमा अफ़ग़ानिस्तान के बडकशान प्रान्त में स्थित वख़ान कॉरिडोर से लगती है। चीन तालिबान को आर्थिक मदद की एवज में यह आश्वासन चाहेगा कि वख़ान कॉरिडोर का इस्तेमाल चीन में अस्थिरता बढ़ाने के लिए न किया जाए।

इस प्रकार तालिबान के उभार से एशिया के इस क्षेत्र में सामरिक समीकरणों में अहम बदलाव आना तय है। अमेरिकी साम्राज्यवाद अपनी इस शर्मनाक पराजय और चीन के बढ़ते प्रभुत्व के मद्देनज़र अपनी गिरती साख़ को बचाने के लिए निश्चय ही कोई कार्रवाई करेगा जिससे अमेरिका और चीन के बीच जारी अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा तीखी होगी। अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडेन ने अमेरिकी सेना की अफ़ग़ानिस्तान से झटपट वापसी का कारण पूछा जाने पर यह जवाब दिया कि वे अपना ध्यान चीन पर केन्द्रित करना चाहते हैं। स्पष्ट है कि आने वाले दिनों में साम्राज्यवाद के अन्तरविरोधों का नतीजा बढ़ती आतंकी घटनाएँ, बेपनाह हिंसा और भीषण युद्धों के रूप में सामने आयेगा।

# उत्तर प्रदेश जनसंख्या विधेयक – 2021

(पेज 16 से आगे)

06 से 2015-15 के दस सालों में जहाँ हिन्दू आबादी की टीएफ़आर में 0.5 प्रतिशत की कमी आई थी, वही मुस्लिम आबादी में यह कमी 0.8 प्रतिशत की है। बहुत से सर्वेक्षणकर्ताओं ने यह अनुमान लगाये हैं कि 2071 तक हिन्दू तथा मुस्लिम आबादी की जनसंख्या वृद्धि दर बराबर हो जाएगी। लेकिन संघ परिवार अपने आदर्श हिटलर और मुसोलिनी जैसे फ़ासिस्टों के नक्शे क़दम पर चलते हुए इस फ़ासीवादी मिथ्याप्रचार को हवा देता रहता है।

जनसंख्या को सभी समस्याओं का कारण बताकर जनता के सिर पर ठीकरा फोड़ने का काम पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा बहुत लम्बे समय से किया जा रहा है। 18वीं सदी में माल्थस द्वारा दिए गए तर्क का भ्रम फ़ैलाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के अनुपात में उत्पादन में होने वाली वृद्धि बहुत कम होती है। माल्थस के अनुसार जनसंख्या 2, 4, 8, 16.. के हिसाब से यानी गुणोत्तर श्रेणी में बढ़ती है जबकि संसाधन में वृद्धि समान्तर श्रेणी यानी 1, 2, 3, 4... के रूप में होती है। माल्थस ने इस समस्या का बहुत ही मानवद्रोही हल दिया था जो कि अमीर तबकों व शासक वर्ग व उनके तलुआचाट बुद्धिजीवियों को बहुत भाता है। माल्थस का हल यह था कि महामारी आदि को रोकना नहीं चाहिए बल्कि महामारियों से होने वाली आम जनता की मौतों से व्यवस्था सही रहेगी। आज के वर्तमान फासीवादी उभार के दौर में यह तर्क नस्ल, धर्म आदि के नाम पर आबादी के क़त्ले-आम की तरफ ले जाता है। वास्तव में माल्थस का यह सिद्धान्त आँकड़ों की हेराफ़ेरी और झूठ पर आधारित था। माल्थस ने अपने इस सिद्धान्त को सही साबित करने के लिए आबादी में वृद्धि का आँकड़ा अमेरिका से लिया था और खाद्यान्न और आजीविका के साधनों की वृद्धि के लिए फ्रांस को आधार बनाया था। ग़ौरतलब है कि अमेरिका की आबादी के बढ़ने की वज़ह प्राकृतिक नहीं बल्कि बड़े पैमाने पर वहाँ पर प्रवासियों का आना था। जबकि फ्रांस के संसाधनों की फ्रांस की आबादी से तुलना की जाये तो यह सामने आता है कि आबादी के अनुपात में संसाधन कहीं तेज़ी से बढ़ रहे थे। फ़िर भी इस झूठ को पूँजीवादी व्यवस्था के पैरोकारों द्वारा हाथोंहाथ लपक लिया गया।

आज पूरी दुनिया भर में आबादी में बढ़ोत्तरी का एक कारण ग़रीबों द्वारा ज्यादा बच्चा पैदा करना नहीं, बल्कि मृत्यु दर में आनेवाली कमी है। मसलन, 1950-55 में दुनिया भर का औसत संभावित जीवन तक़रीबन 46 साल हुआ करता था, जो कि 2000-05 में 65 साल हो गया। कई देशों में आबादी बढ़ोत्तरी दर शून्य से कम है। जिस रफ़्तार से आबादी से बढ़ रही है, उस रफ़्तार से 2040 तक आबादी करीब 7.6 अरब तक पहुंचेगी। उसके बाद यह घटेगी और 21वीं सदी के अंत में 5 अरब रह जायेगी। जिसमें बच्चे और नौजवान बहुत कम होंगे, बुजुर्गों की संख्या बहुत ज्यादा होगी। आज इन्हीं वज़हों से जापान और चीन जैसे देशों में जनसंख्या नीति में बदलाव किये गए हैं।

सच्चाई यह है कि भुखमरी, कुपोषण, बेरोज़गारी सहित सभी समस्याओं की असली वज़ह लूट और मुनाफ़े पर टिकी यह पूँजीवादी व्यवस्था है। इसलिए इन समस्याओं को हमेशा के लिए ख़त्म करने के लिए इस लुटेरी व्यवस्था को तबाह करके इसकी जगह पर समतामूलक समाज का सपना बनाने के लिए एकजुट होना होगा, जिसका सपना शहीदे-आज़म भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों ने देखा था। आज छात्रों-युवाओं को न केवल जनता के बीच में जाकर जनसंख्या के सवाल फैलाये गये भ्रम को साफ़ करना चाहिए बल्कि संगठित होकर इस जनविरोधी बिल का विरोध करना चाहिए और अपनी एकजुटता के दम पर समान शिक्षा-सबको रोज़गार, भोजन, स्वास्थ्य और आवास के बुनियादी अधिकारों के लिए सरकार को मजबूर करना चाहिए।

# बच्चियों के साथ बलात्कार : भारतीय समाज की एक भद्दी सच्चाई

– गीतिका

पिछले 28 जून को देहरादून के गोविन्दगढ़ इलाक़े से एक 5 साल की बच्ची लापता हुई। अगले दिन अख़बार में ख़बर आयी कि उसका बलात्कार करके उसकी हत्या कर दी गयी और उसका शव जंगल में फेंक दिया गया। इस तरह की घटनाओं का आम होता जाना हमारे समाज की विकृत मानसिकता का ही द्योतक है।

वह बच्ची एक मज़दूर परिवार की थी, उसकी माँ घरों में काम करने गयी थी और पिता ठेकेदार के साथ काम करने चण्डीगढ़ गया था। मेहनतकश आबादी के लिए बच्चों की सुरक्षा एक बहुत बड़ी समस्या है। अगर माँ भी मज़दूर है तो दुधमुँहे बच्चे को भी घर में अकेले छोड़कर काम पर जाना पड़ता है। कहीं भी मज़दूरों के बच्चों के लिए शिशुघर की ज़रूरत पर बात तक नहीं होती।

इस बार इस अपराध को अंजाम देने वाला भी एक मज़दूर है। अख़बार और पुलिसिया रिपोर्ट ये बता रहे हैं कि वह 2016 में भी एक बच्ची के साथ ऐसी हैवानियत कर चुका है। पूरी मीडिया जो अश्लील और फूहड़ वैचारिक ख़ुराक़ परोस रही है उसे हर उम्र और हर वर्ग का व्यक्ति ले रहा है। चाहे बाज़ारू भोजपुरी गीत हों, हनी सिंह के घटिया गाने हों या अन्य प्राइवेट एल्बम, सबमें महिलाओं को भोग की वस्तु की तरह पेश किया जाता है, बोलों से भी और फिल्मांकन से भी। हर पूँजीवाद समाज की तरह हमारे समाज के तलछट में भी लम्पट सर्वहाराओं की एक बड़ी आबादी पैदा हुई है जो जानवरों जैसा जीवन जीते-जीते तमाम मानवीय मूल्यों को भी खो देते हैं और वहशी किस्म के अपराधों को अंजाम देते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि स्त्रियों को घरों में ही रहने दो, तब ये नहीं होगा, पर क्या घर सुरक्षित हैं? भाई, रिश्तेदार, टीचर, पड़ोसी यहाँ तक कि पिता भी अपनी बेटी के साथ इस तरह के दुर्व्यवहार में शामिल रहते हैं। 15 जुलाई की रात को अल्मोड़ा में एक पिता ने अपनी 7 साल की बच्ची के साथ दुष्कर्म किया। पहले अपनी पत्नी को मारा जब वह जान बचाने के लिए जंगल की ओर भागी तो उसने अपनी बेटी को अपनी हवस का शिकार बनाया। बेटी की दादी ने उसे बचाने की कोशिश की पर नाकाम रही।

स्त्रियों के विरुद्ध बर्बर यौन हिंसा, बलात्कार के बाद जान से मार डालने, तेज़ाब डाल देने, जला देने जैसी घटनाएँ पिछले 20-25 वर्षों में तेज़ी से बढ़ी हैं। यही वह दौर है जब एक ओर उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के परिणामस्वरूप समाज में अपराधी मानसिकता वाले अमीरज़ादों की संख्या बढ़ी है जिन्हें लगता है कि अपने पैसे की ताक़त से वह कुछ भी कर सकते हैं। दूसरी ओर, बेरोज़गारी और ग़रीबी की मारी तलछट में जीने वाली आबादी भी बढ़ी है जिनके बीच से अमानवीय क़िस्म के अपराधी भी पैदा होते रहते हैं।

बाज़ारवाद ने अश्लीलता को बढ़ावा दिया है। क़ानून या लड़कियों का सेल्फ़ डिफ़ेंस सीखने से सिर्फ़ एक हद तक बदलाव आ सकता है। स्त्री-विरोधी अपराध की घटनाओं के विरुद्ध लड़ने के साथ ही हमें पूरी पितृसत्तात्मक सोच और संस्कृति के विरुद्ध भी एक लम्बी लड़ाई लड़नी होगी। साथ ही यह भी समझ लेना होगा कि महिलाओं वास्तविक बराबरी तो समाज के क्रान्तिकारी बदलाव के बाद ही मिल सकती है। बदलाव की इस प्रक्रिया का भागीदार बनकर ही आज की स्त्री उस बराबरी की दिशा में क़दम बढ़ा सकती है।

## शहीद ऊधम सिंह के 81वें शहादत दिवस (31 जुलाई 1940) के अवसर पर

# शहीद ऊधम सिंह उर्फ़ राम मोहम्मद सिंह आज़ाद की क्रान्तिकारी धर्मनिरपेक्षता और विषमता-मुक्त आज़ादी के सपनों की विरासत ज़िन्दाबाद!

**– कविता कृष्णपल्लवी**

ऊधमसिंह भारत के क्रान्तिकारियों के नक्षत्रमंडल का एक चमकता सितारा थे। उनका जन्म पंजाब के संगरूर जिले के सुनाम के एक बेहद ग़रीब दलित सिख परिवार में हुआ था। बचपन में ही माता-पिता के निधन के बाद उनकी परवरिश उनके बड़े भाई के साथ एक अनाथालय में हुई। 1917 में उनके बड़े भाई का भी निधन हो गया। इसके बाद ऊधमसिंह अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए क्रान्तिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेने लगे। 1919 में जलियाँवाला बाग नरसंहार हुआ और ऊधम सिंह ने उसी समय हर क़ीमत पर इसका बदला लेने की शपथ ली।

1924 में वह ग़दर पार्टी से जुड़ गए। ग़दर पार्टी का गठन अमेरिका और कनाडा में रह रहे आप्रवासी भारतीयों ने 1913 में भारत में क्रान्ति की आग भड़काने के लिए किया था। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में ग़दर पार्टी की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी और आगे चलकर अधिकांश ग़दरी बाबा कम्युनिस्ट आन्दोलन में शामिल हो गये थे। क्रान्ति के लिए पैसा जुटाने के मकसद से ऊधम सिंह ने दक्षिण अफ़्रीका, ज़िम्बाब्वे, ब्राज़ील और अमेरिका की यात्रा भी की। कहा जाता है कि भगतसिंह के कहने के बाद वे 1927 में भारत लौट आये। अपने साथ वे 25 साथी, कई रिवॉल्वर और गोला-बारूद भी लाये थे। कुछ ही दिन बाद अवैध हथियार और ग़दर पार्टी के प्रतिबन्धित अखबार 'ग़दर की गूँज' की प्रतियाँ रखने के लिए उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। उन पर मुक़दमा चला और उन्हें पाँच साल जेल की सज़ा हुई।

जेल में ही ऊधमसिंह को चंद्रशेखर आज़ाद की हत्या और भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू की फाँसी की ख़बर मिली। इसके बाद उपनिवेशवादी ज़ालिमों को कड़ा सन्देश देने का ऊधमसिंह का संकल्प और फ़ौलादी हो गया। जेल से रिहा होने के बाद, कड़ी पुलिस चौकसी के बावजूद, वह कश्मीर यात्रा के दौरान ग़ायब हो गये और जर्मनी होते हुए ब्रिटेन जा पहुँचे। वहाँ सुव्यवस्थित तैयारी के बाद, 13 मार्च, 1940 को कैक्सटन हॉल में हो रही एक मीटिंग में उन्होंने जालियाँवाला बाग़ हत्याकाण्ड के समय पंजाब के गवर्नर रहे माइकेल ओ'डायर को गोली मारकर 21 साल पहले ली गयी अपनी शपथ को अंजाम तक पहुँचाया। 4 जून 1940 को उन्हें ब्रिटिश अदालत ने हत्या का दोषी ठहराया और 31 जुलाई, 1940 को लन्दन की पेंटनविले जेल में उन्हें फाँसी दे दी गयी।

भगतसिंह की पीढ़ी के क्रान्तिकारियों की ही तरह ऊधमसिंह भी एक विचारशील क्रान्तिकारी थे। भगतसिंह की ही तरह ऊधमसिंह भी तर्कशील नास्तिक थे। 1930 के दशक में राष्ट्रीय राजनीति में साम्प्रदायिकता के उभार से वह बहुत क्षुब्ध और चिन्तित रहते थे। बचपन में ही उन्होंने गरीबी की कठिन मार झेली थी और दलित पृष्ठभूमि से आने के चलते जातिगत पार्थक्य, भेदभाव और उत्पीड़न से भी वे परिचित थे। इन अनुभवों ने ऊधमसिंह को एक रैडिकल सेक्युलर और जाति-व्यवस्था-विरोधी क्रान्तिकारी बनाया था। उनका स्पष्ट मानना था कि भारतीय जनता साम्प्रदायिक शक्तियों की विभाजनकारी नीतियों को नाकाम करके और जातिगत भेदभाव को दूर करके इस्पाती एकजुटता बनाने के बाद ही ग़ुलामी की बेड़ियों से मुक्त हो सकती है। अन्यथा उसे सच्ची आज़ादी नहीं मिल सकेगी। अपनी इसी सोच के प्रतीक के तौर पर उन्होंने अपना नाम बदलकर राम मोहम्मद सिंह आज़ाद रख लिया था जो तीन प्रमुख धर्मों का प्रतीक था। वे न सिर्फ़ इस नाम से चिट्ठियाँ लिखते थे बल्कि यह नाम उन्होंने अपनी कलाई पर भी गुदवा लिया था। ऊधमसिंह भी एक ऐसे आज़ाद भारत का सपना देखते थे जिसमें आम मेहनतकश जनता के हाथों में सत्ता हो, न कि मुट्ठीभर अमीरों के हाथ में। ऊधमसिंह के सपनों का भारत भी धार्मिक कट्टरपंथियों और जातिगत भेदभाव से मुक्त भारत था।

भगतसिंह और ऊधमसिंह के सपनों को टालने की कीमत आज हम चुका रहे हैं। 1947 में मिली आज़ादी देशी पूँजीपतियों की बुर्जुआ जनवादी सत्ता की स्थापना थी, यह बात अब साफ़ हो चुकी है। लोकतंत्र की सारी कलई उतर चुकी है। नव-उदारवाद के दौर में सत्ता के ज्यादा से ज्यादा निरंकुश होते जा रहे चरित्र को देखने के बाद अब हम सड़कों पर हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों के ख़ूनी नंगनाच को देख रहे हैं। देश को ख़ून का दलदल बनने से बचाने का अब बस एक ही रास्ता है और वह है, व्यापक मेहनतकश अवाम को एकजुट और संगठित करके इंक़लाब के कारवाँ को फिर से आगे गति देना। लेकिन फ़ासिस्टों के मंसूबों को नाकाम करने के लिए हमें आम जनता के बीच के धार्मिक बँटवारों और जातिगत बँटवारों के विरुद्ध, जाति-धर्म की राजनीति के हर रूप के ख़िलाफ़, एक जुझारू सामाजिक आन्दोलन खड़ा करना होगा। तभी ऊधमसिंह और भगतसिंह जैसे हमारे महान क्रान्तिकारियों की शहादत का लहू रंग लाएगा। बिना फ़ैसलाकुन हुए, बिना बहादुरी, दृढ़संकल्प और क़ुर्बानियों के, शोषण और हर प्रकार के अन्याय से मुक्त समाज किसी रात अपने आप हमारे-आपके दरवाज़े पर कोई नहीं पहुँचा जायेगा। जो समाज ऐसे युवा मुक्ति-सेनानी नहीं पैदा कर सकता, वह ग़ुलामी के ख़ून और गन्द के दलदल में पड़े रहने को अभिशप्त होता है!

**नीचे ऊधमसिंह का पहला चित्र उस समय का है जब वह सिख वेश में रहते थे। दूसरा चित्र तब का है जब वह नाम की ही तरह वेशभूषा में भी सिखी के धार्मिक प्रतीक-चिह्नों को छोड़ चुके थे और तीसरा चित्र ओ'डायर को गोली मारने के बाद गिरफ़्तारी के समय का है।**

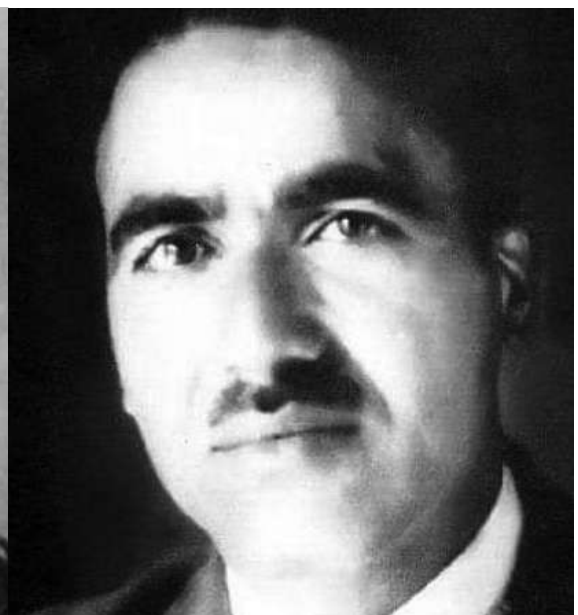

## प्रेमचन्द के जन्मदिवस (31 जुलाई) के अवसर पर

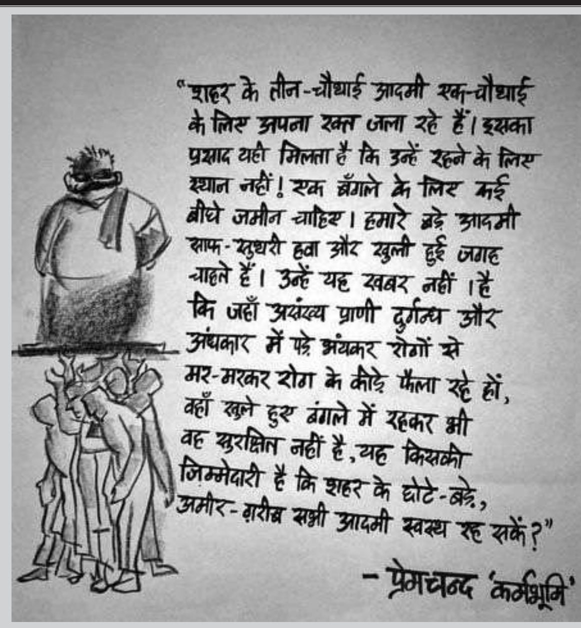


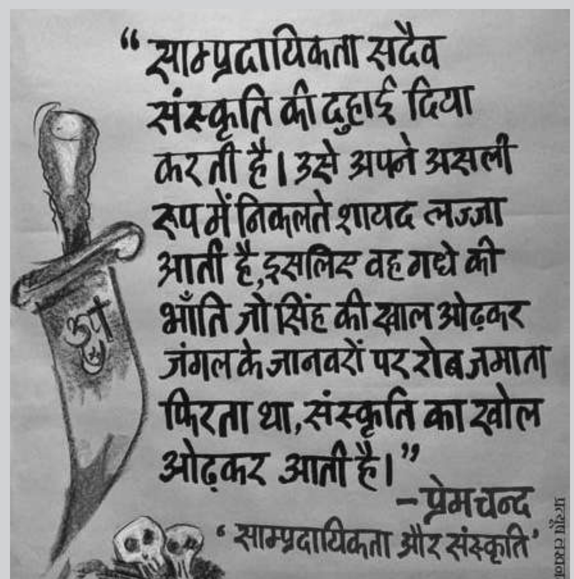


'प्रत्यूष' पोस्टर – रामबाबू

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

## उत्तर प्रदेश जनसंख्या विधेयक – 2021

# बुनियादी मुद्दों से ध्यान भटकाने के लिए लाया गया यह क़ानून जनता के जनवादी अधिकारों पर फ़ासीवादी हमला है!

**– अमित**

उत्तर प्रदेश कोरोना महामारी की रोकथाम और इलाज में देश में सबसे फिसड्डी राज्यों में साबित हुआ है। लोग दवा-अस्पताल और आक्सीजन के अभाव में दम तोड़ते रहे, लाशें नदियों में बहती रहीं और बालू में दबायी जाती रहीं और सरकार सिर्फ़ झूठे दावों और जुमलेबाज़ी में लगी रही। लाखों ज़िन्दगियों को तबाह कर देने के बावजूद आज तक कोई ठोस तैयारी नहीं की गयी है जबकि महामारी की तीसरी लहर सिर पर है। प्रदेश में बेरोज़गारी के हालात भयानक हो चुके हैं। करोड़ों लोगों को रोज़गार देने के योगी के दावे सिर्फ़ करोड़ों रुपये ख़र्च करके लगाये गये होर्डिंगों और विज्ञापनों तक सीमित हैं। अपराधी "सैंया भए कोतवाल..." गाते हुए प्रदेशभर में बेख़ौफ़ नंगा नाच कर रहे हैं। महँगाई और भ्रष्टाचार ने आम लोगों का जीना दूभर कर दिया है। किसानों की आय दोगुनी करने, बेरोज़गारी दूर करने, स्त्रियों को सुरक्षा देने, अपराध और भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के भाजपा के सारे दावे झूठे साबित हो चुके हैं और लोगों में असन्तोष बढ़ता जा रहा है।

ऐसे में इन फ़ासिस्टों के पास असली मुद्दों से ध्यान भटकाने और मन्दिर-मस्जिद, लव जेहाद जैसे नारे उछालकर हिन्दू-मुस्लिम ध्रुवीकरण करने, हिन्दुओं में आतंकवाद का डर पैदा करने के लिए फ़र्ज़ी मुठभेड़ें और गिरफ़्तारियाँ कराने और चुनाव नज़दीक आने के साथ ही दंगे और तनाव भड़काने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। ध्यान भटकाने के ही एक हथकण्डे के रूप में योगी सरकार अब जनसंख्या क़ानून लेकर आयी है। दरअसल इसके बहाने ये एक तीर से दो शिकार करना चाहते हैं। एक तरफ़ संघी गिरोह इस प्रचार में लगा है कि मुसलमानों की आबादी ऐसे ही बढ़ती रही तो हिन्दू अल्पसंख्यक हो जायेंगे और यह क़ानून दरअसल मुसलमानों को अंकुश में रखने के लिए ही लाया गया है। दूसरी तरफ़ लोगों को यह बताया जा रहा है कि प्रदेश में ग़रीबी और बेरोज़गारी जैसी समस्याओं का असली कारण यह है कि आबादी बहुत ज़्यादा हो गयी है!

योगी सरकार ने हाल ही में उत्तर प्रदेश जनसंख्या (नियन्त्रण, स्थिरीकरण एवं कल्याण) विधेयक – 2021 का प्रारूप जारी किया है। यह विधेयक जनता के जनवादी अधिकारों पर एक फ़ासीवादी हमला है जिसमें यह प्रावधान करने का प्रस्ताव है कि दो से ज़्यादा बच्चों वाले माँ-बाप के निकाय चुनाव लड़ने, सरकारी सुविधाओं का लाभ लेने, सरकारी नौकरियों के लिए आवेदन करने और प्रमोशन हासिल करने आदि पर रोक लगा दी जायेगी। इतना ही नहीं, इस विधेयक में किसी भी परिवार में चार व्यक्तियों का ही राशन कार्ड बनाये जाने जैसे कई जनविरोधी प्रावधान किये गये हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था के पैरोकारों द्वारा ग़रीबी, बेरोज़गारी, भुखमरी आदि के लिए जनता को ही ज़िम्मेदार ठहराये जाने के लिए जनसंख्या को एक हथकण्डे के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा, फ़ासीवादी भाजपा और संघ परिवार पिछले लम्बे समय से मुस्लिम आबादी की जनसंख्या बढ़ने के मिथक का प्रचार करके साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की राजनीति करते रहे हैं। पाठ्यक्रम के माध्यम से जनसंख्या को एक समस्या के रूप में बचपन से ही दिमाग़ में बैठा दिया जाता है। ट्रेनों-बसों में यात्रा करते समय, अस्पताल की लाइनों में, परीक्षाओं का फ़ॉर्म भरते समय, रोज़गार की कतारों में भी हर जगह लोगों को यही महसूस होता है कि जनसंख्या बहुत बढ़ गयी है। वे यह नहीं समझ पाते कि हर जगह दिखती भीड़ की असली वजह समाज का यह ढाँचा है जिसमें रोज़गार के अवसर और सारे संसाधन कुछ ही जगहों पर केन्द्रित हैं और लोगों की ज़रूरत से बहुत कम मात्रा में हैं।

योगी सरकार के जनसंख्या विधेयक में कहा गया है कि प्रदेश में संसाधनों की बहुत कमी है और समान वितरण तथा सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए राज्य की जनसंख्या को नियंत्रित करना और स्थिर करना ज़रूरी है। ज़ाहिर है कि जनसंख्या को स्थिर करके समान वितरण और सतत विकास की बात सिर्फ़ एक सफ़ेद झूठ है। अगर अभी की स्थिति की बात करें तो काफ़ी पिछड़े ढंग से खेती के बावजूद उत्तर प्रदेश अनाज उत्पादन के मामले में देश के अग्रणी राज्यों में है। गेहूँ और गन्ना के उत्पादन में उत्तर प्रदेश पहले नम्बर पर और चावल के उत्पादन में दूसरे नम्बर पर है। मगर इस अनाज का बड़ा हिस्सा एफ़सीआई के गोदामों में सड़ता रहता है, उसे चूहे खाते हैं और शराब बनाने वाली कम्पनियाँ सस्ते दामों में ख़रीद ले जाती हैं। दूसरी ओर रोज़ भूख और कुपोषण से हज़ारों मौतें हो जाती हैं। प्रदेश में प्राकृतिक संसाधनों की कोई कमी नहीं है। तमाम तरह के काम करने योग्य जन शक्ति मौजूद है। इसके बावजूद अगर ग़रीबी और बेकी है, तो उसका कारण लोगों की ज़रूरतों के बजाय पूँजीपतियों के मुनाफ़े को ध्यान में रखकर बनायी गयी योजनाएँ हैं। पूरे देश पर भी यही बात लागू होती है।

इलाहाबाद के नैनी, कानपुर, बिजनौर, चित्रकूट, पूर्वी उत्तर प्रदेश में जगह-जगह चीनी मिलें, मिर्ज़ापुर में कृषि यंत्र कारखाने, गोरखपुर में खाद कारख़ाना, प्रतापगढ़ में एटीएल कारखाने सहित सैकड़ों छोटे-बड़े कारख़ाने पिछले कई सालों से बन्द पड़े हैं। वहाँ पड़ी मशीनें और पूरा ढाँचा बर्बाद हो रहा है। हर साल सरकार के मंत्री चाय-समोसे और यात्राओं में और फ़र्ज़ी दावों और एक-दूसरे को बधाई देने वाले होर्डिंग में जितना पैसा फूँक देते हैं, उतने में ही ज़रूरी सामानों का उत्पादन करने वाले और हज़ारों रोज़गार देने वाले कई कारख़ाने चालू हो सकते हैं। सरकार के पास न तो बुनियादी ढाँचे की कमी है और न ही पूँजी की। नीचे दी गयी तालिका 1 और 2 से यह बात और स्पष्ट हो जाती है।

देश स्तर पर बात की जाये तो आज़ादी के बाद से अब तक देश में खाद्यान्न, खनन और उद्योगों में आबादी की तुलना में कई सौ गुना की वृद्धि हो चुकी है। सांसदों-विधायकों की ऐय्याशी, चुनावी रैलियों में पानी की तरह बहाये जा रहे पैसे का कोई हिसाब ही नहीं है। लेकिन जब जनता की बात आती है तो संसाधनों की कमी पड़ जाती है। अगर इन पैसों और संसाधनों का ठीक से इस्तेमाल किया जाये तो करोड़ों नौजवानों को रोज़गार दिया जा सकता है। इतना ही नहीं, हर सरकारी विभाग में बड़े पैमाने पर पद खाली पड़े हैं, लेकिन इन पदों को भरने के बजाय सारा काम संविदा और ठेके पर कराया जा रहा है। पूरे का पूरा विभाग ही पूँजीपतियों की झोली में डाला जा रहा है। अगर इन खाली पदों को भरा जाये तो लाखों नौजवानों को रोज़गार दिया जा सकता है। सेण्ट्रल विस्टा प्रोजेक्ट, जिसको जारी रखने के लिए फ़ासिस्टों ने कोरोना महमारी के दौरान विशेष क़ानून तक बना दिया, में ख़र्च किये जा रहे रु. 20,000 करोड़ में, रु. 100 करोड़ की लागत वाले 200 अस्पताल बनाये जा सकते हैं। लेकिन इन सब बातों पर पर्दा डालने के लिए जनसंख्या का हौव्वा खड़ा किया जाता है।

दूसरे सरकार इस बिल को लाने के पीछे यह उद्देश्य बता रही है इस बिल के माध्यम से प्रदेश में कुल प्रजनन दर (टीएफ़आर) को 2.1 प्रतिशत पर लाया जाएगा। टीएफ़आर का 2.1 प्रतिशत होने का अर्थ है जनसख्या का स्थिर हो जाना। लेकिन वर्ल्ड बैंक 2018 के आँकड़ों के हिसाब से भारत की प्रजनन दर घटते हुए 2.2 पर पहुँच गयी है और इसमें भी उत्तर प्रदेश में इसके घटने की दर पूरे देश के औसत से कहीं ज़्यादा है। प्रजनन दर का 2.1 प्रतिशत होना जनसंख्या के स्थिर होने का मानक माना जाता है। इसी तरह के आँकड़े कई और सर्वे दिखा चुके हैं। साफ़ है कि देश की जनसंख्या आने वाले सालों में घटेगी। इतना ही नहीं, इन आँकड़ों की और गहराई से छानबीन की जाए तो संघ परिवार के मुस्लिम आबादी के बढ़ने के झूठे प्रचार की भी पोल खुल कर सामने आ जाती है। नेशनल फ़ैमिली हेल्थ सर्वे के आँकड़ों के अनुसार 2005-

(पेज 14 पर जारी)

**तालिका 1 : आज़ादी के बाद से 2010-11 तक खाद्यान्न उत्पादन और जनसंख्या में वृद्धि की तुलना**

| | 1950-51 | 1960-61 | 1970-71 | 1980-81 | 1990-91 | 2000-01 | 2010-11 | बढ़ोत्तरी% |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कुल खाद्यान्न उत्पादन* | 50.8 | 82.0 | 108.4 | 129.6 | 176.4 | 196.8 | 244.5 | 381.3 |
| चावल* | 20.6 | 34.6 | 42.2 | 53.6 | 74.3 | 84.9 | 95.9 | 365.5 |
| गेहूँ * | 6.5 | 11.0 | 23.8 | 36.3 | 55.1 | 69.7 | 86.9 | 1236.9 |
| कपास# | 3.0 | 5.6 | 4.8 | 7.0 | 9.8 | 9.2 | 33.0 | 1000 |
| गन्ना* | 57.1 | 110.0 | 126.0 | 154.2 | 241.0 | 295.9 | 342.4 | 499.6 |
| दलहन* | 8.4 | 12.7 | 11.8 | 10.6 | 14.3 | 11.1 | 18.2 | 116.6 |
| तिलहन* | 5.2 | 6.9 | 9.6 | 9.4 | 18.6 | 18.4 | 32.5 | 525 |
| जनसँख्या** | 36.10 | 43.92 | 54.82 | 68.33 | 84.64 | 102.87 | 121.08 | 237.4 |

उत्पादन और जनसंख्या वृद्धि का प्रतिशत 1950-51 और 2010-11 के बीच है

*कृषि उत्पादन मिलियन टन में (1 मिलियन = 10 लाख) # मिलियन गाँठें प्रत्येक गाँठ का वज़न 170 किलोग्राम

**जनसंख्या करोड़ में

स्रोत : 1) पॉकेट डायरी ऑफ़ एग्रीकल्चरल स्टेटिस्टिक्स, पृष्ट संख्या 41, भारत सरकार, 2015

2) ऑफिस ऑफ़ द रजिस्ट्रार जनरल ऑफ़ इण्डिया, मिनिस्ट्री ऑफ़ होम अफेयर्स एण्ड इकनोमिक सर्वे 2013-14

**तालिका 2 : खनन तथा उद्योग के प्रमुख क्षेत्रों में हुए उत्पादन में वृद्धि की जनसंख्या से वृद्धि से तुलना**

| | 1950-51 | 1960-61 | 1970-71 | 1980-81 | 1990-91 | 2000-01 | 2010-11 | बढ़ोत्तरी% |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कोयला* | 32.3 | 55.2 | 76.3 | 119.0 | 225.5 | 332.6 | 570.8 | 1667.2 |
| हॉट मेटल* | 1.7 | 4.3 | 7.0 | 9.6 | 12.2 | 22.6 | 50.9 | 2894.1 |
| कच्चा स्टील* | 1.5 | 3.5 | 6.1 | 10.3 | Na | 30.6 | 69.57 | 4538 |
| तैयार स्टील* | 1 | 2.4 | 4.6 | 6.8 | 13.5 | 32.3 | 66.01 | 6501 |
| स्टील कास्टिंग** | Na | 35.0 | 62.0 | 71.0 | 262.0 | 352.4 | 1540 | 4300 |
| एल्युमिनियम** | 4.0 | 18.5 | 168.8 | 199.0 | 451.1 | 620.4 | 790.4 | 19660 |
| मशीन उपकरण# | 3 | 8 | 430 | 1692 | 7731 | 12263 | 18400 | 132333.33 |
| व्यावसायिक वाहन## | 8.6 | 28.2 | 41.2 | 71.7 | 145.5 | 152.0 | 752.6 | 8651.2 |
| सीमेण्ट* | 2.7 | 8.0 | 14.3 | 18.6 | 48.8 | 99.2 | 209.7 | 7666.7 |
| सूती वस्त्र& | 4215 | 6738 | 7602 | 8368 | 15431 | 19718 | 31742 | 653.1 |
| चीनी** | 1134 | 3029 | 3740 | 5148 | 12047 | 18510 | 24350 | 2047.3 |
| चाय** | 277 | 318 | 423 | 568 | 705 | 827 | 967 | 249.1 |
| कॉफ़ी** | 21 | 54 | 71 | 139 | 170 | 313 | 283 | 1247.6 |
| बिजली उत्पादन$ | 5 | 17 | 56 | 111 | 264 | 499 | 811.1 | 16122 |
| जनसंख्या (करोड़ में) | 36.10 | 43.92 | 54.82 | 68.33 | 84.64 | 102.87 | 121.08 | 237.4 |

* उत्पादन प्रति दस लाख टन, ** उत्पादन प्रति हज़ार टन, # उत्पादन प्रति दस लाख रुपये में,

## उत्पादन प्रति दस लाख, & उत्पादन प्रति दस लाख वर्ग मीटर, $ बिजली उत्पादन अरब किलोवाट

स्रोत : (1) इकोनॉमिक सर्वे, भारत 2011-12, पृष्ट संख्या 32-34

(2) ऑफ़िस ऑफ़ द रजिस्ट्रार जनरल ऑफ़ इण्डिया, मिनिस्ट्री ऑफ़ होम अफेयर्स तथा इकोनॉमिक सर्वे 2013-14

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006